कृषि उद्यान दर्पण

ISSN No 2583-3316

Volume 2 : Issue 2 : August 2022

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524

वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com

Articale Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक	**डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, उद्यान विज्ञान विभाग एवं फल विज्ञान विभाग चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
वरिष्ठ संपादक	**डॉ. रोशन लाल राऊत** वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.) **डॉ. शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ** सहायक अध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन (एम.पी.)
सह सम्पादक गण	**डॉ. नीलम राव रंगारे** वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़) **डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह** पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.) **डॉ. अर्घ्य मानी** सहायक अध्यापक, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय (एलपीयू), फगवारा, (पंजाब) **प्रखर खरे** एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)
पांडुलिपि संपादक	**स्निग्धा हल्दर**
कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक	**डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय** विशेष कार्य अधिकारी आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)
फोटोग्राफी	**स्वप्निल सुभाष स्वामी**
वेब एडिटर	**प्रितेश हलदार** प्रकाशक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)
प्रकाशक	**Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

ISSN No. 2583-3316

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- ❖ **किचन गार्डनिंग** 1
  भार्गव किरण, किरन कोठियाल, शिखा जैन एवं हिमानी रावत
- ❖ **शहतूत-पोषण से भरा खजाना** 4
  भार्गव किरण, किरन कोठियाल, शिखा जैन एवं हिमानी रावत
- ❖ **सब्जियों के पौध तैयार करने में प्लग ट्रे प्रौद्योगिकी का महत्व** 7
  अंकित सिंह, शशिबाला, योगेश चन्द्र पटेल एवं शिवराज कुमार वर्मा
- ❖ **लहसुन का कटाई उपरान्त संरक्षण एवं मूल्य संवर्धन** 9
  प्रतिभा, मनीषा वर्मा एवं सद्दाम हुसैन
- ❖ **बरसात के दिनों में पशुओं की देखभाल एवं टीकाकरण** 13
  असलम एवं सतीश पाटीदार
- ❖ **वर्षा जल संचयन समय की जरुरत** 15
  सी. पी. राहंगडाले, संदीप शर्मा, प्रदीप लकड़ा एवं सूरज चंद्र पंकज
- ❖ **पलवारीः फल बागानों में मृदा नमी संरक्षण एवं खरपतवार नियन्त्रण की एक उपयोगी तकनीक** 18
  पवन कुमार मौर्या एवं वी.के. त्रिपाठी
- ❖ **किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए पपीता हो सकता है एक शसक्त विकल्प** 21
  विशाल नाथ, सन्तोष कुमार, कृष्ण प्रकाश एवं स्वपनिल पाण्डेय
- ❖ **नवयुग में मृदा अस्वस्थताः कारण और उपाय** 28
  कृष्णा कौशिकों एवं केदार महादेव घेवारे
- ❖ **फलदार फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव** 33
  रवि प्रताप, वी. के. त्रिपाठी एवं जितेंन्द्र कुमार शुक्ला
- ❖ **बागवानी में प्लास्टिक मल्चिंग का उपयोग** 36
  एन. आर. रंगारे, डी. पी. शर्मा एवं अन्य रावत
- ❖ **सोयाबीन के प्रमुख कवक रोग एवं इसका प्रबंधन** 39
  विवेक विश्वकर्मा, अभिलाषा ए. लाल, एवं सोबिता साइमन
- ❖ **पॉलीहाउस में षिमला मिर्च उत्पादन** 44
  खलील खान एवं मनोज मिश्र
- ❖ **गुणों से भरी खट्टी मीठी इमली** 50
  महेन्द्र जड़िया, बलवीर सिंह एवं प्रमोद कुमार वर्मा
- ❖ **भूमि को स्वस्थ्य बनायें** 55
  ओपेन्द्र कुमार सिंह, आशुतोष मिश्र, उमाशंकर मिश्र एवं पावन सिरोठिया
- ❖ **सम्पूर्ण फली खाने योग्य स्नो पी की वैज्ञानिक खेती** 57
  विजय बहादुर

❖❖

ISSN No. 2583-3316

किचन गार्डनिंग

भार्गव किरण[1*], किरन कोठियाल[2], शिखा जैन[3] एवं हिमानी रावत[4]

[1]सब्जी विज्ञान प्रभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

[2एवं 4]बागवानी विभाग (फल विज्ञान), कृषि महाविद्यालय, गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर

[3]फल और बागवानी विभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पत्राचारकर्ता : bhargavsirasapalli@gmail.com

परिचय

इस तेजी से भागती हुई दुनिया में बहुत से लोगों को आराम करने और आराम करने के तरीके की आवश्यकता होती है। ऐसा करने के लिए बागवानी एक आदर्श शौक है। बहुत से लोग कई अलग-अलग कारणों से बागवानी करना पसंद करते हैं। यह एक ऐसी गतिविधि है जिसे आप अपने जीवनसाथी, बच्चों, दोस्तों, परिवार या पड़ोसियों के साथ साझा कर सकते हैं। आपको घर से बाहर निकालने के लिए यह एक बेहतरीन गतिविधि है। साथ ही साथ यह कीमती खाली समय बिताने का एक उत्पादक तरीका है। अपना खुद का भोजन उगाने से पर्यावरण को कई तरह से मदद मिलती है। बागवानी करते समय पर्यावरण की मदद करने का सबसे बड़ा तरीका एक हरा बगीचा या किचन गार्डन है। इसे हासिल करने के लिए आप कई चीजें कर सकते हैं। यह ज्यादातर जैविक तरीके से किया जाता है इसलिए इसे 'ग्रीन गार्डन कहा जाता है। जब आप अपना खुद का भोजन उगाते हैं, तो आपको सबसे ताज़ी चीजें मिलती हैं।

किचन गार्डनिंग क्या है?

किचन गार्डन रसोई के अपशिष्ट जल का उपयोग करके घर के पीछे का स्थान होता है और सब्जियाँ उगाना है। किचन गार्डनिंग को होम गार्डन या न्यूट्रिशन गार्डन या किचन गार्डनिंग या वेजिटेबल गार्डनिंग कहा जाता है। यह बाकी रिहायशी इलाकों से अलग जगह है। इसका उपयोग खाने के लिए पौधों को उगाने, भोजन का स्वाद बढ़ाने और अक्सर कुछ औषधीय पौधों के लिए किया जाता है।

किचन गार्डन स्थापित करने के लिए क्या कदम उठाए गए है ?

क. साइट चयन

- आमतौर पर किचन गार्डनिंग के चयन के लिए सबसे अच्छी जगह घर के पीछे का स्थान होता है।
- यह सुविधाजनक है क्योंकि परिवार के सदस्य अवकाश के दौरान सब्जियों की निरंतर देखभाल कर सकते हैं और बाथरूम और रसोई से अपशिष्ट जल को आसानी से सब्जियों को गमले या ट्रे में ले जाया जा सकता है।
- किचन गार्डन का आकार निर्भर करता है भूमि की उपलब्धता और उन व्यक्तियों की संख्या पर जिनके लिए सब्जियाँ उपलब्ध कराई जानी है। चार से पाँच व्यक्तियों के औसत परिवार के लिए सब्जियों की आपूर्ति के लिए पाँच सेंट भूमि पर्याप्त होगी।

ख. भूमि की तैयारी

- सबसे पहले कुदाल से भूमि खुदाई 30.40 सेमी की गहराई तक की जाती है।

घर के पीछे किचन गार्डनिंग

- पत्थरों, झाड़ियों और बारहमासी खरपतवारों को हटा दिया जाता है।
- 100 किलो अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट को मिट्टी में मिलाकर मिट्टी में मिला दिया जाता है।

- आवश्यकता के अनुसार 45 सेमी. या 60 सेमी. की दूरी पर रिज और फ़रो का निर्माण किया जाता है।
- रिज और फ़रो के स्थान पर समतल क्यारियों का निर्माण भी किया जा सकता है।

ग. बुवाई और रोपण

- सीधी बोई जाने वाली फसलें जैसे भिंडी, क्लस्टर बीन्स और लोबिया को मेड़ों के एक तरफ 30 सेमी. की दूरी पर बोया जा सकता है। चौलाई को एक भाग बीज को 20 भाग महीन बालू में मिलाकर प्लाटों में फैलाकर बोया जा सकता है। छोटा प्याज, पुदीना और धनियाँ को प्लाटों की मेड़ के साथ लगाया बोया जा सकता है।
- टमाटर, बैगन और मिर्च जैसी प्रतिरोपित फसलों के बीजों को नर्सरी क्यारियों या गमलों में एक महीने पहले रेखा खींचकर बोया जा सकता है।
- बारहमासी पौधे बगीचे के एक तरफए आमतौर पर बगीचे के पीछे के छोर पर स्थित होने चाहिए ताकि वे अन्य फसलों को छाया न दें।

पौध रोपण

अन्य सब्जियों की फसलों के साथ पोषण के लिए प्रतिस्पर्धा करें।

किचन गार्डन में क्या उगायें?

एक फसल पैटर्न, जो भारतीय परिस्थितियों पर्वतीय जगहों के तहत किचन गार्डन के लिए मददगार साबित हो सकता है, नीचे दिया गया है।

क्रम सं.	सब्जी का नाम	मौसम
1.	टमाटर, प्याज, मूली, बीन्स, भिंडी	जून-सितंबर, अक्टूबर-नवंबर, दिसंबर-फरवरी, मई
2.	बैंगन, बीन्स, टमाटर, ऐमारैंथस	जून-सितंबर, अक्टूबर-नवंबर, जून-सितंबर, मई
3.	मिर्च, मूली, लोबिया, प्याज (बेल्लारी)	जून-सितंबर, दिसंबर-फरवरी, मार्च-माई
4.	भिंडी, मूली, गोभी, क्लस्टर बीन्स	जून-अगस्त, सितंबर-दिसंबर, जनवरी-मार्च।
5.	बेल्लारी प्याज, चुकंदर, टमाटर, प्याज	जून-अगस्त, सितंबर-नवंबर, दिसंबर-मार्च, अप्रैल- मई
6.	क्लस्टर बीन्स, बैंगन और चुकंदर	जून-सितंबर, अक्टूबर-जनवरी
7.	बेल्लारी प्याज, गाजर, कद्दू (छोटा)	जुलाई-अगस्त, सितंबर-दिसंबर, जनवरी-मई
8.	लब लब (झाड़ी प्रकार), प्याज, भिंडी, धनियाँ	जून-अगस्त, सितंबर-दिसंबर, जून-मार्च, अप्रैल-मई

सब्जी के बगीचे की देखभाल कैसे करे?

सब्जियों के पौधे खिलने और फल पैदा करने पर भारी मात्रा में ऊर्जा खर्च करते हैं, जो एक बड़े पौधों के तुलना में कभी भी परिपक्व नहीं होते हैं। एक पौधा फल देता है ताकि वह बीज पैदा कर सके, लेकिन हम बीज पूरी तरह से बनने से पहले सब्जियों की कटाई करते हैं। यह वनस्पति पौधों के लिए तनावपूर्ण है, इसलिए उन्हें पोषण तत्व देना महत्वपूर्ण है, जो उन्हें स्वास्थ्य और उत्पादन जारी रखने के लिए आवश्यक है।

अधिक कीट समस्याओं के कारण उपेक्षा से उपज कम और घटिया सब्जियां भी हो सकती हैं।

(i) अपने बगीचे को नियमित रूप से पानी दे

अपने पौधों को नियमित रूप से पानी दें। नियमित पानी के बिना, कुछ सब्जियों के पौधे सूखने लगते हैं, जैसे टमाटर, थोड़ी देर के लिए बिना संघर्ष के अचानक पानी से भर जाने पर फट जायेंगे। आप हमेशा बारिश पर निर्भर नहीं रह सकते, यदि संभव हो तो ड्रिप विधि द्वारा सिंचाई की सिफारिश की जानी चाहिए। ताकि पानी को सीधे पौधे की जड़ों तक पहुँचा सके।

(ii) अपने सब्जी पौधों को बनाए रखें

बागवानी के मौसम में जल्दी प्रदर्शन करने का एक और रखरखाव कार्य पौधों को बाँधना है। लंबी और चढ़ाई वाली सब्जियों के लिए किसी प्रकार की स्टेकिंग या ट्रेलिंग की आवश्यकता होती है। रोपण के समय दाँव लगाना सबसे अच्छा है।

(iii) खरपतवार निकाले

सब्जियों के पौधे भोजन और पानी के लिए खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा करना पसंद नहीं करतीं। अपने बगीचे से मैन्युअल रूप से खरपतवार हटाने के अलावा, आसपास के रास्ते और घास से भी खरपतवारों को हटाना महत्वपूर्ण है। अगर उन्हें बीज में जाने दिया जाता है, तो वे बीज आपके बगीचे में समाप्त हो सकते हैं।

यदि आप बागवानी के मौसम की शुरुआत से ही खरपतवारों पर नियंत्रण रखते हैं, तो आपको बाद में गर्मियों में खरपतवार नाशक का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है।

(iv) मल्चिंग जोड़े

मल्चिंग सबसे अच्छी चीजों में से एक है, जो आप अपने पौधों के लिए कर सकते हैं। यह खरपतवारों को दबाता है, पौधों की जड़ों को ठंडा करता है और पानी का संरक्षण करता है। जब पौधे पर्याप्त रूप से घने हो जाते हैं तो वे स्वयं एक जीवित गीली घास के रूप में काम कर सकते हैं ।

सब्जियों के बगीचों के लिए पसंदीदा गीली घास बीज रहित पुआल है। यह एक अच्छा आवरण बनाता है, रोपण के लिए एक तरफ ढ़केलना काफी आसान है और इसे मौसम के अंत में मिट्टी में बदल दिया जा सकता है।

(v) मिट्टी को समृद्ध करे

सब्जियाँ भारी फीडर होती है। बढ़ते मौसम के दौरान एक या दो बार अधिक कार्बनिक पदार्थों के साथ रोपण और साइड-ड्रेस के साथ आपको हर साल बगीचे में कुछ कार्बनिक पदार्थ काम करना चाहिए। बेशक, अलग अलग पौधों की अलग-अलग ज़रूरतें होती है, इसलिए किसी भी उर्वरक निर्देशों पर ध्यान देना ज़रूरी है जो आपके रोपण के साथ या आपके बीज पैकेट के पीछे आए हो।

निष्कर्ष

किचन गार्डन अब शहरी क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह ज्यादातर रसोई के कचरे को कम करने में मदद करता है और रसोई के अपशिष्ट जल को पुनचक्रित करने में भी मदद करता है। एक किचन गार्डन शुरू करके और अपने खुद के भोजन के एक छोटे से हिस्से को भी उगाकर, आप न केवल अपने खाने के साथ एक जुड़ाव पैदा करेंगे, बल्कि आप ग्रह की मदद भी करेंगे। इस तथ्य का ज़िक्र नहीं है कि यह अच्छा लगता है, अपना और अपने परिवार का पेट भरने में हाथ बटायें। साथ ही यह एक अच्छा व्यायाम है और तनाव को कम करता है।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

शहतूत-पोषण से भरा खजाना

भार्गव किरण[1*], किरन कोठियाल[2], शिखा जैन[3] एवं हिमानी रावत[4]
[1]सब्जी विज्ञान प्रभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[4एवं 2]बागवानी विभाग (फल विज्ञान), कृषि महाविद्यालय, गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर
[3]फल और बागवानी विभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
पत्राचारकर्ता : bhargavsirasapalli@gmail.com

परिचय

शहतूत एक बहुउद्देशीय पेड़ है और इसकी कई अनूठी और विशेष विशेषताओं के कारण इसका बहुत बड़ा संभावित आर्थिक मूल्य है। शहतूत रेशमकीट (बाम्बेक्स मोरी) का एक मात्र खाद्य पौधा होने के अलावा, इसका उपयोग भोजन, चारा, इंधन और फाइबर जैसी विविध जरूरतों को पूरा करने के लिये भी किया जाता है। यह *मोरेसी (Moraceae)* परिवार व *जीनस मोरस (Genus Morus)* से सम्बन्धित है। यह पूर्वी और मध्य चीन का मूल निवासी है। भारत में *मोरस* की कई प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिसमें *मोरस अल्बा (Morus Alba)*, *मोरस इंडिका (Morus Indica)*, *मोरस सेराटा (Morus Serrate)* और *मोरस लाई विगटा (Morus Laevigata)* शामिल हैं।

शहतूत की अधिकांश भारतीय किस्में मोरस इंडिका से सम्बन्धित हैं। शहतूत की खेती भारत में 2,38,000 हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। भारत के जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और केरल राज्यों में शहतूत का उत्पादन किया जाता है।

शहतूत का फल कई होटे फलों से बना एक समग्र फल है। इसका फल अत्यधिक स्वादिष्ट, कम कैलोरी वाला एवं पोषक तत्वों से भरपूर होता है। ज्यादातर शहतूत उगाने वाले देशों में आमतौर पर इसे कच्चा खाया जाता है या इसे सुखाया जाता है। शहतूत के फलों के रस से वाइन, जेली और जैम इत्यादि संसाधित खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं।

शहतूत के फल की त्वचा चिकनी और नाजुक होती है और परिपक्व होने पर इसका रंग बदल जाता है। विभिन्न शहतूत प्रजातियों के फल लंबे, अंडाकार या बेलनाकार होते हैं, जो सफेद, लैवेंडर, गुलाबी या बैंगनी और गहरे लाल से काले रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। फल का रंग प्रजातियों की पहचान नहीं करता है। *मोरस अल्बा (Morus Alba)* (सफेद शहतूत) सफेद, लैवेंडर या काले फल पैदा करते हैं, जो आमतौर पर गहरे लाल व लगभग काले होते हैं। इसके सबसे अच्छे क्लोनों में एक स्वाद होता है, जो काले शहतूत के बराबर होता है। *मोरस निग्रा (Morus Nigra)* (काली शहतूत) फल बड़े और रसीले होते हैं, जिनमें मिठास और तीखापन का अच्छा संतुलन होता है, जो उन्हें शहतूत की सबसे अच्छी स्वाद वाली प्रजाति बनाते हैं। दक्षिण भारत में, शहतूत फल साल में दो मौसमों में अक्टूबर से नवंबर और मार्च से मई के दौरान देखे जाते हैं। हालाकि, जब भी शहतूत की छटाई की जाती है, तो कलियों के अंकुरण के साथ फूल आते हैं और उसके बाद फल बनते हैं।

फलों की संरचना

शहतूत के फल सफेद से गुलाबी सफेद, बैंगनी या गहरे बैगनी से काले रंग के होते हैं। शहतूत की किस्मों के साथ पोषक मूल्य और संरचना भिन्न हो सकती है।

संघटक	मात्रा (%)
पानी	85-88
कार्बोहाइड्रेट (शर्करा, मुख्य रूप से ग्लूकोज और फ्रक्टोज)	7.8-9.2
प्रोटीन	0.4-1.5
वसा (मुख्य रूप से फैटी एसिड, जैसे लिनोलिक, स्टीयरिक और बीज में ओलिक अम्ल)	0.4-0.5
मुक्त अम्ल (मुख्यतः मैलिक अम्ल)	1.1-1.9
रेशा	0.9-1.4
खनिज पदार्थ	0.7-0.9

पौष्टिक-औषधीय पदार्थ

शहतूत के फल का सेवन मानव स्वास्थ्य में सुधार में योगदान देता है, क्योंकि वे अमीनो एसिड, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज और फाइटोकेमिकल्स सहित पौष्टिक गुणों का एक समृद्ध स्रोत हैं। शहतूत के फलों में मौजूद न्यूट्रास्युटिकल्स पौष्टिक तत्व कई पुरानी बीमारियों का इलाज कर सकते हैं।

अमीनो अम्ल

शहतूत में गैर-आवश्यक अमीनो एसिड होते हैं, अर्थात्, एलेनिन, आर्जिनिन, एस्पार्टिक एसिड, ग्लूटामिक एसिड, ग्लाइसिन, प्रोलाइन, सेरीन, और आवश्यक अमीनो एसिड अर्थात् आइसोल्यूसीन, ल्यूसीन, लाइसिन, मेथियोनीन, सिस्टीन, फेनिलएलनिन, टायरोसिन, थ्रेओनीन, ट्रिप्टोफैन, वेलिन और हिस्टिडीन मौजूद होते हैं। सफेद शहतूत में अमीनो एसिड जैसे मोरुसिमिक एसिड ए (A), मोरुसिमिक एसिड बी (B), मोरुसिमिक एसिड सी (C), मोरुसिमिक एसिड डी (D), मोरुसिमिक एसिड मौजूद होते हैं।

कार्बोहाइड्रेट

एक कप शहतूत के फल में कुल 14 ग्राम का कार्बोहाइड्रेट होता है। उन कार्बोहाइड्रेट में से 83 प्रतिशत शर्करा हैं होती है और अन्य 17 प्रतिशत आहार फाइबर मौजूद होता हैं। शहतूत के फलों में कार्बोहाइड्रेट (मोनोसैकराइडः फ्रैक्टोज और ग्लूकोज) और कुल फेनोलिक सामग्री की पर्याप्त मात्रा मौजूद होती है और यह सुझाव दिया जाता है कि इंसुलिन नामक पॉलीसेकेराइड की उपस्थिति के कारण शहतूत के फलों को आहार भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। काले रंग की चीनी संरचना का प्रतिशत *(मोरस निग्रा) (Morus Nigra)* और लाल शहतूत *(मोरस रूबरा) (Morus Rubra)* में 52 प्रतिशत ग्लूकोज और उसके बाद 48 प्रतिशत फ्रैक्टोज़ पाया जाता है।

वसा

शहतूत की एक सर्विंग में एक ग्राम से भी कम वसा होती है। उस एक ग्राम में प्रमुख वसा पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड होता है। इसके बाद मोनोअनसैचुरेटेड और संतृप्त फैटी एसिड होता है। शहतूत में स्वाभाविक रूप से कोई कोलेस्ट्रॉल नहीं होता है और कोई ट्रांस वसा नहीं होता है। शहतूत के फलों में लिनोलिक एसिड और कुछ संतृप्त फैटी एसिड जैसे पामिटिक एसिड ¼C18% 2n6½, मिरिस्टिक एसिड, स्टीयरिक एसिड सहित अठारह प्रकार के असंतृप्त वसा अम्ल पाए जाते हैं।

विटामिन और खनिज

शहतूत के फल ए (A), सी (C), ई (E) और के जैसे विटामिन और इलेक्ट्रोलाइट्स सोडियम और पोटेशियम के समृद्ध स्रोत होते हैं। इनमें मध्यम मात्रा में विटामिन ई (E), विटामिन के (K), विटामिन ए (A) और विटामिन बी2 (B2) भी होते हैं। इन फलों में विटामिन बी3 (B3), फोलेट या विटामिन बी9 (B9), विटामिन बी6 (B6) और बी1 (B1) भी कम होते हैं। शहतूत में पूरी तरह से विटामिन डी (D), बी12 (B12) और विटामिन बी9 (B9) के होती है एवं फॉलिक एसिड पाये जाते हैं। यह कैल्शियम और आयरन जैसे खनिजों में भी समृद्ध है। इनमें पोटेशियम, मैग्नीशियम, ताँबा, फॉस्फोरस, कोलीन, सेलेनियम और जस्ता के मध्यम से निम्न स्तर होते हैं।

फाइटोकेमिकल्स

शहतूत फाइटोकेमिकल्स से भरपूर होते हैं, जैसे कि एल्कलॉइड, पॉलीफेनोल्स, फ्लेवोनोइड्स और एंथोसायनिन, जो मानव स्वास्थ्य पर लाभकारी प्रभाव में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। कांग और सहकर्मी अंबरलाइट IRC & 50 आयन एक्सचेंज क्रोमैटोग्राफी का उपयोग करके 1: HCL & MeOH शहतूत फलों के अर्क से साइनाइडिन-3(O & D) ग्लूकोपाइरानोसाइड (C_3G) को अलग करते हैं। परिपक्व फल एंथोसायनिन से भरपूर होते हैं, जो विटामिन सी की तुलना में मजबूत मुक्त कण सफाई की गतिविधि के साथ उत्कृष्ट एंटीऑक्सिडेंट का एक स्रोत हैं। एंथोसायनिन नारंगी, लाल, बैंगनी, काले और नीला सहित ताजे पौधों के खाद्य पदार्थों के आकर्षक रंगों के लिए जिम्मेदार होता हैं। । ये रंग पानी में घुलनशील हैं और आसानी से निकाले जा सकते हैं, जो प्राकृतिक खाद्य रंग प्रदान करते हैं। शहतूत के फल से एंथोसायनिन का उपयोग फैब्रिक डाई या उच्च रंग मलय (100 से ऊपर) के खाद्य रंग के रूप में किया जा सकता है।

काले शहतूत के फल में मौजूद उच्च फिनोल (मोरस निग्राएल), जीवाणुरोधी और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि के लिए काफी संभावनाये होती हैं। शहतूत प्रजातियों की फाइटोकेमिकल और एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि की जाँच की। **कृष्णा और सहकर्मियों** ने एस्कॉर्बिक एसिड सामग्री 6.8

शहतूत के फल

शहतूत के फलों के रंग और आकार में भिन्नता

से 27.1 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम -1, कुल पॉलीफेनोल्स 0.51 से 1.58 मिलीग्राम जी -1, कुल फ्लेवोनोइड 0.37 से 1.26 मिलीग्राम जी -1 और ओ डायहाइड्रिक फिनोल 0.14 से 0.33 मिलीग्राम जी -1 ताजा वजन से भिन्न होता है। शहतूत में उच्च स्तर एंटीऑक्सिडेंट मौजूद होते हैं, जो संक्रमण से लड़ने के लिए एक उत्कृष्ट स्रोत के रूप में कार्य करते हैं।

शहतूत के फल के पौष्टिक लाभ

शहतूत के फल का उपयोग कमजोरी, चक्कर आना, टिट, थकान, एनीमिया, गले में खराश, अवसाद मूत्र असंयम के इलाज के लिए किया जाता है। इसके फलों का रस उच्च कैल्शियम के कमी के कारण हड्डियों में होने वाली नाजुकता के जोखिम को कम करने में सक्षम होता है। यह शराब के चयापचय को बढ़ावा देते हैं और प्रतिरक्षा में वृद्धि करते हैं। जिन महिलाओं को एनीमिया, पीलापन, जी मिचलाना जैसे लक्षण विशेष रूप से प्रसव के बाद अनुभव होते हैं, वे इन लक्षणों को कम करने के लिए नियमित रूप से शहतूत का रस ले सकती हैं। यह अनियमित मासिक धर्म में भी मदद कर सकता है और मासिक धर्म के दौरान होने वाले दर्द को भी कम कर सकता है।

निष्कर्ष

शहतूत एक बहुउद्देश्यीय पेड़ है और इसकी कई अनूठी और विशेष विशेषताओं के कारण इसका बहुत बड़ा संभावित आर्थिक मूल्य है। शहतूत के फलों में मौजूद न्यूट्रास्यूटिकल्स में अमीनो एसिड, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज और फाइटोकेमिकल्स शामिल हैं, जो कई पुरानी बीमारियों से लड़ने के लिए कई स्वास्थ्य लाभ देते हैं। शहतूत के फलों के अर्क की यह जबरदस्त बायोएक्टिविटी खाद्य और दवा उद्योग में एक नया आयाम खोल सकती है।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

सब्जियों के पौध तैयार करने में प्लग ट्रे प्रौद्योगिकी का महत्व

अंकित सिंह[1*], शशिबाला[2], योगेश चन्द्र पटेल[3] एवं शिवराज कुमार वर्मा[4]

[1,2 एवं 4]उदय प्रताप कालेज, वाराणसी

[3]राजकीय महाविद्यालय जखनी, वाराणसी

पत्राचारकर्ता : ankitp13on@gmail.com

परिचय

संकर बीच की उच्च लागत व जैविक एवं अजैविक कारकों के प्रति संवेदनशीलता ने सब्जी उत्पादकों का ध्यान सब्जियों के पौध तैयार करने की तरफ आकर्षित किया है। इन दिनों संरक्षित नर्सरी विधि द्वारा पौध को तैयार करना विकसित देशो में बहुत सामान्य प्रक्रिया हो गयी है। वही अगर हम अपने देश की बात करें तो आज भी बहुत बड़े पैमाने पर पौध को परम्परागत विधि से तैयार किया जा रहा है, जिससे शुरूआती लागत अधिक हो जाती है। वर्तमान समय में विकल्प के तौर पर विगत वर्षों में प्लग ट्रे प्रौद्योगिकी का प्रचलन सब्जियों की पौध तैयार करने के लिये किया जा रहा है, जिसका विकास छोटे पैमाने में उद्योग के तौर पर प्रमुख सब्जी उत्पादक क्षेत्र में प्रगतिशील किसानों द्वारा विशेष रूप से 'साहर के किनारे वाले हिस्सों में किया जा रहा है। इस प्रौद्योगिकी के द्वारा स्वस्थ्य एवं विषाणु मुक्त, पौधे सब्जी उत्पादकों द्वारा किसी भी मौसम में तैयार किया जा सकता हैं। इन विधि द्वारा सब्जियों की पौध तैयार करने के लिए प्लास्टिक की खानेदार ट्रे का प्रयोग करते है। ट्रे के खाने शंकू आकार के होने चाहिए क्योंकि पौधे के जड़ों की समुचित विकास के लिए यह आवश्यक होता है। प्लग ट्रे का आकार विभिन्न सब्जियों के लिए अलग-अलग होता है। इस विधि में पौध को मृदा रहित माध्यम में उगाया जाता है। इस माध्यम में कोकोपीट, वर्मीकुलाइट व परलाइट को क्रमशः 3:1:1 के अनुपात में आयतन के आधार पर मिलाकर बनाया जाता है। इस प्रौद्योगिकी में उपयोग होने वाले माध्यम को पानी मिलाकर गीला करने के बाद ट्रे के खानों में भरा जाता है तथा बाद में ट्रे के खाने में उंगली की सहायता से हल्का गड्ढा बनाकर एक बीज बोया जाता है।

प्लग ट्रे में उगाये गये पौधों का चित्रण

बीज बोने के उपरान्त वर्मीकुलाईट की पतली परत से ढक दिया जाता है, जो अंकुरण व अधिक समय तक नमी बनाए रखने में सक्षम होता है।

अंकुरण के पश्चात् सिंचाई के साथ आवश्यक मात्रा में मुख्य तत्वों (नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश) और समस्त सूक्ष्म तत्वों को भी दिया जाता है, जिससे पौधों का विकास अच्छे से

हो सके। मुख्य व सूक्ष्म तत्वों के लिए बाजार में उपलब्ध एन. पी. के. विभिन्न अनुपात (20:20:20) या 19: 19: 19 या 15: 15: 15: वाला उत्पाद मिलता है। जिसको पानी भरे एक पात्र में निश्चित मात्रा लेकर घोल बनाकर तैयार कर लेते हैं तथा उस घोल को मौसम के अनुसार सिंचाई जल के साथ मिलाकर प्लग ट्रेज में दिया जाता हैं। समान्य तौर पर गर्मी के मौसम में 60-80 ppm तथा सर्दी में 130-150 ppm का घोल ट्रे में दिया जाता है।

सिंचाई के साथ मुख्य व सूक्ष्म तत्वों के घोल देने की प्रक्रिया को फर्टीगेशन कहते है। गर्मी के मौसम में पौध की सिंचाई कम से कम दो बार व फर्टीगेशन एक बार ही किया जाता है। वही सर्दी के दिनों में केवल एक बार सिंचाई व फर्टीगेशन किया जाता है। इस विधि द्वारा केवल 25-30 दिनों मे पौधे रोपण योग्य हो जाते है।

पौध तैयार हो जाने के बाद इसे ट्रे में बने खानों से बाहर निकाला जाता है। इस तकनीक द्वारा पौधे आसानी से खानों के बाहर निकल आते है। पौध में बृद्धि के दौरान समय-समय पर कीटनाशक का छिड़काव लाभदायक होता है। सामान्यतः पौधे का रोपण सुबह या सांयकाल में किया जाता है।

प्लग ट्रे में पौधों को उगाने के लिए अनुशंसित आकार

सब्जियाँ	सेल का आकार (इंच)	अनुकूलतम आकार (इंच)
टमाटर	1.5-4	3.0
बैगन	1.5-4	3.0
शिमला मिर्च	1.0-4	2.0
तरबूज	1.5-4	3.0
खरबूज	1.5-4	3.0
खीरा	1.5-4	2.0
करेला	1.5-3.0	2.0
कद्दू	1.5-4	3.0
पत्ता गोभी	1.0-2.5	1.5
फूल गोभी	1.0-3	2.0
सत्पूतियाँ	1.5-4	3.0
नेनूआ	1.5-4	3.0
चुकन्दर	1.5-3.0	2.0
भिन्डी	1.0-3.0	1.5

पौध कठोरीकरण

अच्छे पौधे के विकास व पौधे मृत्य दर को कम करने के लिए सब्जियों के पौधों का कठोरीकरण मुख्य क्षेत्र में रोपण से पूर्व एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जिसमें पौधों को धीरे-धीरे कोठरीकरण किया जाता है और पौध अपने को मुख्य क्षेत्र के वातावरण के अनुरूप ढाल लेते है, जिससे पौधों में विपरीत वातावरण जैसे 'शीतलतम, शुष्क हवा, पानी की कमी एवं उच्चताप के प्रति सामना करने की क्षमता बढ़ जाती है।

प्लग ट्रे नर्सरी उगाने के लाभ

- इस विधि द्वारा विपरीत परिस्थिति में पौध तैयार कर सकते है। जहाँ खुले क्षेत्र में करना मुमकिन नहीं होता है।
- मृदा जनित रोगों से मुक्त पौधे को तैयार किया जाता है।
- बहुत कम समय में स्वस्थ पौधा तैयार किया जाता है।
- पराम्परागत विधि की तुलना में इस विधि में पौध का मृत्यु दर बहुत कम होता है।
- इस विधि द्वारा विशाणु रोग रहित पौधे तैयार किये जाता है।
- इस विधि में कम क्षेत्र में अधिक पौध तैयार किये जाते हैं व एक वर्ष में कई बार पौध तैयार किया जा सकता है।
- इस विधि द्वारा व्यवसायिक स्तर पर पौध तैयार किया जा सकता है।
- परम्परागत विधि की तुलना में संकर बीज की उच्च लागत को 30-40 प्रतिशत कम किया जा सकता है।
- इस विधि में पौध की वृद्धि एक समान होती है।
- इस विधि द्वारा पौधे को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना आसान होता है।
- ऐसी सब्जियाँ जिनका परम्परागत विधि से पौध तैयार करना सम्भव नहीं है जैसे बेल वाली सब्जियों की भी पौध तैयार की जा सकती है।

निष्कर्ष

प्लग ट्रे प्रौद्योगिकी द्वारा उगाये गये पौधे संकर बीज की उच्च लागत को कम करने एवं कम अवधि में ज्यादा पौध को वर्ष भर विपरीत परिस्थितियों में भी तैयार कर सकते हैं। ये पौधे अधिक स्वस्थ भी होते हैं। इस प्रौद्योगिकी के द्वारा किसान छोटे पैमाने पर उद्योग शुरू कर सकते हैं, जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति को और सुदृढ़ कर सकते हैं। ✡✡

ISSN No. 2583-3316

लहसुन का कटाई उपरान्त संरक्षण एवं मूल्य संवर्धन

प्रतिभा[1*], मनीषा[2] वर्मा एवं सद्दाम हुसैन[3]

[1,2एवं3]उद्यान विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय.उदयपुर

पत्राचारकर्ता : prolaniyaskr23@gmail.com.

परिचय

लहसुन एक बहुत ही उपयोगी कन्द वाली बाहरमासी मसाला फसल है। यह *एलिएसी (Alliaceae)* परिवार की एक प्रजाति है तथा इसका वैज्ञानिक नाम *एलियम सैटिवुम एल (Allium Sativum)* है। इस फसल का प्रयोग प्राचीन काल से ही भारत तथा अन्य देशों में किया जा रहा है तथा जिसकी खेती अब दुनिया भर में होती है। लहसुन पूरे भारत के मैदानी इलाकों में उगाया जाता है। इस पौधे के बल्ब को मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है। कई भारतीय व्यंजनों का आदर्श घटक लहसुन अपनी तेज सुगंध व तीखे स्वाद के लिए जाना जाता है तथा इसमें पाये जाने वाले सल्फर के यौगिक ही इसके तीखे स्वाद और गंध के लिए उत्तरदायी होते हैं, जैसे कि एलिसिन, ऐजोइन इत्यादि। भोजन व दवाओं में इसके व्यापक उपयोग के कारण इसका व्यवसायिक महत्व बढ़ जाता है। दक्षिणी, यूरोपीय एवं एशियाई व्यंजनों में लहसुन बल्ब करी, सूप, टमाटर सॉस व सलाद का स्वाद बढ़ाने के लिए काटकर या पीसकर प्रयोग किया जाता है। मध्य एशिया इसका मुख्य मूल स्थान है व भूमध्य क्षेत्र इसका दूसरा मूल स्थान है। लहसुन के बल्ब भूमिगत विकसित होते हैं एवं काफी छोटे फॉकों से मिलकर बने होते हैं, जो कि एकपतली सफेद या गुलाबी परत से घिरे होते हैं। इन बल्ब को काफी लम्बे समय तक रखा जा सकता है साथ ही खराब हैडलिंग व दूर के परिवहन को भी ये झेल सकते हैं।

लहसुन में औषधि के गुण भी पाये जाते हैं। प्राचीन समय से लहसुन का उपयोग बहुत सारी बीमारियों के उपचार में किया जाता है। संस्कृत रिकार्ड में इसका उपयोग लगभग 5,000 साल पहले दर्ज है, जबकि चीन में इसका उपयोग कम से कम 3,000 साल पहले से किया जा रहा है। लहसुन, बहुत सी बीमारियाँ जैसे उच्च रक्तचाप, सिरदर्द कीड़े के काटने टयूमर में एक करगर उपाय है। लहसुन में एक तत्व अलिसिन होता है, जिसके कारण इसका उपयोग संक्रमण, कैंसर व हृदय की बीमारियों की रोकथाम में किया जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध में लहसुन का उपयोग एंटीसेप्टिक के रूप में ग्रंगीन की रोकथाम में किया गया था।

प्रजातियाँ

भारत के विभिन्न हिस्सो में इसकी विभिन्न प्रजातियाँ जैसे- गोदावरी, श्वेता, मद्रासी, तबीटी, कियोल एवं जामनगर उगायी जाती है। विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय और आईसीएआर (ICAR) संस्थानों में विभिन्न किस्मों के विकास पर काम कर रहे हैं। राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान और विकास फाउंडेशन एन.एच.आर.डी.एफ (NHRDF) एचएयू (HAU) पीएयू (PAU) लुधियाना और आईएआरआई (IARI) नई दिल्ली द्वारा लहसुन की उन्नत किस्मों उत्पादन के लिए निरन्तर कार्य किया जा रहा है-ये किस्में हैं-एचजी-4, एचजी-2, पूसा सिलेक्श-10, एलसीजी-7, एआरयू-52 वीएल-6, वीएल-7 एग्रीफाउंड व्हाइट (जी-41), यमुना सफेद (जी-1), यमुना सफेद-2 (जी-90) यमुना सफेद-3 (जी-282) यमुना सफेद-4 (जी-323) एवं एंग्रीफाउंड

पार्वती (जी-313)। ये किस्में ज्यादातर छोटे बल्ब वाली है और छोटी कलियाँ वाली होती हैं। जी-282 और एग्रीफाउंड पार्वती बड़ी कलियों वाली प्रजाति होती है। पंजाब में उगायी जाने वाली तीन प्रमुख किस्में लहसुन-56-4, पंजाब लहसुन-1 और पंजाब लहसुन-17 है।

उत्पादन एवं व्यापार

खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के अनुसार, लहसुन का सबसे बड़ा उत्पादक देश चीन है एवं इसके बाद भारत, दक्षिणी कोरिया, अमेरिका, मिस्र एवं स्पेन हैं। भारत में मध्यप्रदेश प्रमुख लहसुन उत्पादक राज्य है। इसके बाद राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, उड़ीसा, महाराष्ट्र व अन्य राज्य हैं।

यद्यपि चीन, फ्रांस, स्पेन एवं मिस्र मुख्य लहसुन निर्यातक देश हैं। इन देशों में बड़े फाँके वाला लहसुन (40-60 मि.मी. व्यास का बल्ब जिसमें 10-15 फाँके होते हैं) पैदा किया जाता है, जिसकी माँग काफी ज्यादा है। जी- 282 व एग्रीफाउंड पर्वती किस्मों में लहसुन बल्ब बड़े आकार के होते हैं। इन किस्मों की खेती मध्यप्रदेश, उड़ीसा, हरियाणा एवं पंजाब राज्यों में बढ़ रही है।

लहसुन के पोषक तत्व

पोषक तत्वों के नाम	मात्रा प्रति 100 गाम
नमी	**60 प्रतिशत**
प्रोटीन	6.3 ग्राम
वसा	10 मिली ग्राम
खनिज पदार्थ	1 ग्राम
रेशा	80 मिलीग्राम
कार्बोहाइड्रेट	29 ग्राम
कैल्शियम	3 मिलीग्राम
फॉस्फोरस	31 मिलीग्राम
आयरन	0.1 मिलीग्राम
निकोटिनिक एसिड	0.40 मिलीग्राम
विटामिन C	13 मिलीग्राम

कटाई एवं हैंडलिंग

सामान्यतः लहसुन की विभिन्न प्रजातियों की फसल, मृदा व मौसम पर निर्भर करते हुए बुवाई के 130-150 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाती है। जब भूमि से ऊपर लहसुन आंशिक रूप से शुष्क हो जाता है व जमीन की ओर झुकने लगता है, तब यह कटाई के लिए तैयार हो जाता है। इसके बल्ब को पूरी तरह से सुखाने के लिए लगभग एक हफ्ते तक खेत में इसे क्यूरिंग के लिए रखा जाता है। सूर्य की तेज रोशनी से बचाव के लिए बल्ब को इनके पत्तों से ढक कर रखा जाता है। सुखाने के बाद, पौधों को छोटे बंडलों में बाँध कर बॉक्स की लकड़ियों या रस्सी पर लटकाकर भण्डारित किया जाता है। भण्डारण या विपरण से पहले, क्यूरिंग किये हुए लहसुन की छटाई व ग्रेडिंग की जाती है। टूटे हुए, चोट लगे हुए, रोगग्रस्त व खोखले बल्ब को अलग कर दिया जाता है। छटाई व ग्रेडिंग का मुख्य उद्देश्य विपणन में अच्छा मूल्य प्राप्त करना है।

भारत में घरेलू उपभोग के लिए लहसुन बल्ब को खुले जालीदार जूट बैग में रखा जाता है। आंध्र प्रदेश में लहसुन को 90 किग्रा की पैकिंग में रखा जाता है। कर्नाटक व अन्य लहसुन उत्पादित राज्यों में लहसुन को 40-60 किग्रा की पैकिंग में रखा जाता है। लहसुन ग्रेडिंग व पैकिंग नियम, 18 किग्रा, 25 किग्रा व 50 किग्रा के आकार की पैकिंग प्रदान करता है। निर्यात के लिए 18 किग्रा व 25 किग्रा की पैकिंग, छिद्रित दस प्लाई वाले गत्तों के डिब्बों में की जाती है। बहुत से विकसित देशों में प्लास्टिक के बुने हुए बैग या नाइलोन की जाली वाली बैग लहसुन बल्ब की पैकेजिंग के लिए सामान्यतः प्रयोग किये जाते है। इनके कई लाभ हैं, जैसे भण्डारण के दौरान नुकसान में कमी एवं विपणन के लिए आकर्शक पैकेजिंग।

भण्डारण

लहसुन बल्ब व लहसुन के प्रसंस्कृत उत्पाद का इसकी भण्डारण अवधि बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण है। अच्छी तरह से क्यूरिंग किये हुए लहसुन के बल्ब को साधारण हवादार कमरे में लम्बे समय के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। पत्तियों के साथ भी लहसुन को अच्छे हवादार भण्डारण कमरे में लटकाकर भण्डारित किया जा सकता है। यद्यपि यह व्यवसायिक स्तर पर सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें ज्यादा स्थान की आवश्यकता होती है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि 0.6 डिग्री सेल्सियस से 0^{0} सेल्सियस और 70 प्रतिशत या कम सापेक्ष आर्द्रता पर लहसुन को कम से कम 6-7 महीनों के लिए भण्डारित किया जा सकता है।

कटाई उपरान्त बीमारियों का रासायनिक नियंत्रण

भण्डारण व विपणन के समय, लहसनु की महत्वपूर्ण बीमारियाँ ब्लू मोल्ड रॉट, बल्ब की क्षति, एस्परजिलस रॉट, फ्यूसेरियम रॉट, 'शुष्क रॉट एवं ग्रे मोल्ड रॉट हैं। सबसे ज्यादा प्रचलित बीमारी ब्लू मोल्ड रॉट है, जिसमें लहसुन मे घाव बन जाते हैं। बल्ब की क्षति के बाद वाली अवस्थाओं में इसके फाँके मुलायम हो जाती है। जिनेब का छिड़काव शुष्क रॉट को कुशलता पूर्वक रोकने में प्रभावशाली है। भण्डारित लहसुन में व्हीट कर्ल माइट को नियंत्रित करने के लिए मिथाइल ब्रोमाइड की धूनी 32 ग्राम/मीटर^3 के अनुसार 2 घंटों के लिए 21^0 सेल्सियस तापमान पर करनी चाहिए।

(क) लहसुन बल्ब में विकिरण उपचार

अंकुरण के कारण भण्डारण के समय लहसुन के बल्ब के वजन में काफी गिरावट आती है। कई शोधकर्ताओं ने आयोनाइजिंग विकिरण रेडियेशन के प्रभाव से इन नुकसानों में कमी को साबित किया है। कटाई के 30 दिन बाद, लहसुन के बल्ब को कोबाल्ट-60 की 50 ग्रे मात्रा से उपचारित करने पर भण्डारण के समय अंकुरण व वजन घटने में कमी आती है।

लहसुन के प्रसंस्कृत उत्पाद

कई व्यंजनों में ताजे लहसुन के उपयोग के अलावा, लहसुन से विभिन्न प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पाद बनाये जाते हैं। इसके प्रसंस्करण की कई विधियों को मानकीकृत किया गया है। इसके विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पाद निम्नलिखित हैं।

(क) लहसुन के पेस्ट

पेस्ट उन विकल्पों में से एक है, जो लहसुन की नाजुक और ताजा गंध को बरकरार रखता है। सबसे पहले साफ किये हुए लहसुन की फाँके तोड़कर इसका छिलका उतारा जाता है। तत्पश्चात् एक समान पेस्ट प्राप्त करने के लिए इसे सावधानी पूर्वक 90 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 15 मिनट के लिए पानी के साथ उबाला जाता है। उसके बाद चक्की का सहायता से पीसकर पेस्ट तैयार किया जाता है। आकर्षक स्वरूप व अच्छी भण्डारण क्षमता के लिए 0.1% सल्फर डाइ-ऑक्साइड, 15% सोडियम क्लोराइड एवं 0.05% एसकॉर्बिक अम्ल मिलाया जा सकता है। यह उत्पाद 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर कम से कम छः महीनों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

(ख) लहसुन का तेल

अच्छे से मसले हुए लहसुन को भाप में पकाकर इसका तेल प्राप्त किया जाता है। नमी से युक्त लहसुन से 0.46-0.57 प्रतिशत तक तेल की उपज होती है, जिससे यह काफी महँगा होता है। लहसुन के तेल का विशिष्ट घनत्व एवं अपवर्तक सूचकांग 250 सेल्सियस तापमान पर क्रमशः 1.091-1.098 एवं 1.5740-1.5820 है।

लहसुन के वाष्पीशील घटक	
डाइ. मिथाइल सल्फाइड	डाइ एलील डाइ सल्फाइ
डाइ-एलीलसल्फाइड	एलील प्रोपाइल डाइ सल्फाइड
मिथाइल एलील सल्फाइड	मिथाइल एलील डाइ सल्फाइड
डाइमिथाइल डाइ सल्फाइड	मिथाइलप्रोपाइल डाइ सल्फाइड
डाइप्रोपाइल डाइ सल्फाइड	डाइ मिथाइल ट्राइ सल्फाइड
सल्फर डाइ ऑक्साइड	डाइ एलील ट्राइ सल्फाइड
डाइ-एलील थायोसल्फीनेट	मिथाइल एलील ट्राइ सल्फाइड

लहसुन के तेल का मुख्य घटक डाइ-एलील, डाइ सल्फाइड है। आमतौर पर लहसुन के तेल में वनस्पति तेल मिलाकर इसके तेल के कैप्सूल बनाये जाते है। इसमें लहसुन की तीखी गंध आती है व इसे खाद्य पदार्थों में फ्लेवर एजेंट के रूप में उपयोग किया जाता है।

(ग) लहसुन का अचार

पूरे कटे हुए लहसुन को सिरका, ब्राइन या वनस्पति तेल एवं मसालों में मिलाया जाता है। लहसुन का उच्च गुणवत्ता

वाला अचार बनाने के लिए पैकिंग करने से पहले पारम्परिक तरीके या माइक्रोवेब द्वारा ब्लांचिग करना बहुत जरूरी है। इससे एंजाइम एलीनेज को निष्क्रिय करके तीखा स्वाद व हरा रंग दूर किया जा सकता है।

(घ) निर्जलित/शुष्क लहसुन

लहसुन की नमी निकालने से कुल वजन में कमी, भण्डारण स्थान की बचत एवं परिवहन में आसानी होती है। मुख्यतः लहसुन को सुखाकर स्लाइस, क्यूबस एवं पाउडर बनाया जाता है। स्थिर अवस्था में लहसुन पाउडर की रासायनिक संरचना ताजा लहसुन की रासायनिक संरचना जैसी होती है। लहसुन का पाउडर बनाने से पहले इसे छीला, काटा व सुखाया जाता है। सूखे हुए लहसुन का उपयोग खाद्य प्रतिष्ठानों एवं घर में काफी उपयोग किया जाता है। भारतीय मानक विनिर्देश ब्यूरो आई एस 5452 में निर्जलित लहसुन के नमूने के परीक्षण तरीकों का प्रावधान है। इसके अनुसार, शुष्क लहसुन सफेद से क्रीमी रंग का हो जाता है।

लहसुन के प्रसंस्कृत उत्पाद

निष्कर्ष

लहसुन एक महत्वपूर्ण फसल है, जिसका उपयोग विभिन्न सब्जियों और व्यंजनों के स्वाद बढ़ाने और मसाले के रूप मे किया जाता है। फसल परिवेशीय परिस्थितियों मे संग्रहित गुणवता मे खराब होती है। इसलिए बागवानी फसलो को कटाई के उपरांत उचित प्रबंधन बहुत जरुरी है।मुख्य ध्यान इनको खराब होने से बचाने पर होना चाहिए और फसल का अधिकतम उपयोग पौष्टिक और सुरक्षित तरीके से करना चाहिए। कटाई के बाद कि तकनीक खेत से लेकर उपभोक्ता तक पहुँचाने के बीच की सभी विधियों को शामिल करना चाहिए।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

बरसात के दिनों में पशुओं की देखभाल एवं टीकाकरण

असलम[1] एवं सतीश पाटीदार[2]

[1]विभागः पशुधन एवं कुक्कुट प्रबंधन

[2]विभागः शस्य विज्ञान

एस.वी.वी.वी., इन्दौर

पत्राचारकर्ता : aslam@svvv.edu.in

परिचय

भारत देश एक कृषि प्रधान देश है। कृषि के साथ साथ पशुपालन एक अच्छा व्यवसाय है, जिससे भारतीय किसानों को अच्छा मुनाफा होता है। बारिश का मौसम कृषि कार्य के लिए तो अच्छा है लेकिन इस समय में पशुओं को अनेकों बीमारियों के होने का खतरा रहता है, जिससे अगर किसान भाई अपने पशुओं की सही तरीके से देखभाल नहीं करते, तो उन्हें बहुत ही ज्यादा नुकसान का खामियाज़ा भुगतना पड़ता है। बारिश के मौसम में चारों तरफ हरियाली दिखती है, ऐसे में पशु भी नए घास का आनंद लेते है पर इस मौसम में कई बीमारियाँ भी तेजी से फैलती है, जिसके कारण कई बार पशुओं की मौत भी हो जाती है। बारिश के मौसम में पशुओं को कई प्रकार की बीमारियाँ होती है, इसलिए बरसात के मौसम में पशुओं के रख-रखाव पर विशेष बातों का ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। जो कि निम्नवत् है-

- बारिश के मौसम में पशुओं को बाहर खुले में चरने के लिए नहीं भेजना चाहिए, क्योंकि बारिश में कई तरह के कीड़े जमीन से निकलकर घास में बैठ जाते है, जिसको खाने से पशुओं में कई तरह की बीमारियाँ हो सकती है।
- बारिश के मौसम में हरा चारा अधिक मात्रा में पाया जाता है, जिससे किसान भाई पशुओं को हरा चारा अधिक खाने को देते है, लेकिन ऐसा नहीं करना चाहिए। पशु को ज्यादा हरा चारा देने से अफारा रोग हो सकता है।
- अगर पशु को अफारा हो जाए तो तुरंत डॉक्टर को बुलाये, अगर डॉक्टर को आने में देरी हो रही हो तो घरेलु उपचार करें।
- इसके उपचार के लिए मीठा सोडा - 50 ग्राम, सरसो का तेल - 250 मि.ली. एवं हींग का घोल - 10 ग्राम तीनों को मिलाकर दे, ऐसा करने से पशु को काफी आराम मिलता है।
- बारिश के मौसम में चारों तरफ पानी भरा होने से मक्खी और मच्छर का बहुत ज्यादा संख्या में पाए जाते है। इससे बचने के लिए रोज शाम को नीम की पत्ती का धुँआ करना चाहिए और बाड़े के पास भरे हुए पानी के गड्ढे में मिट्टी का तेल या डीजल की कुछ बूँदे डाल देना चाहिए।
- पशु बाड़े की नियमित साफ सफाई करें और पशुओं का साफ एवं सुखे स्थान पर बाँधें।
- पशुओं को सिर्फ हरा चारा नहीं देना चाहिए, अपितु उसके साथ सुखा चारा भी देना चाहिए। सूखे और हरे चारे का अनुपात 1:3 होना चाहिए।
- पशु बाड़े को सप्ताह में एक बार लाल दवा या फिनॉयल से सफाई करना चाहिए।
- बरसात के मौसम मे पशुओं का ठंडी हवाओं से भी बचाना चाहिए।

टीकाकरण

बारिश के आने से पहले पशुओं को निम्न टीके लगवाने चाहिए।

टीका का नाम	लगने वाले पशुओं का नाम
1. गलाघोंटू	गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं सूकर
2. खूरपका अथवा मुँहपका	गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूकर और याक
3. ब्रूसेल्लोसिस	गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूकर एवं कुत्ता प्रजाति
4. लंगड़ा बुखार	गाय, भैंस
5. चेचक	भेड़
6. ऐन्ट्रोटाक्सीमिया	भेड़, बकरी
7. गिल्टी रोग	गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं सूकर
8. पी.पी.आर.	भेड़, बकरी
9. सूकर ज्वर	सूकर प्रजाति

पशुपालक को चाहिए कि बरसात आने से एक माह पूर्व अपने नजदीकी पशुचिकित्सालय जा कर डॉक्टर से मिले और जिस भी प्रकार का पशु उनके पास है, उसे टीका लगवाये, यह टीके मुफ्त में या मामूली फीस में लगाये जाते हैं। कभी कभी पशु चिकित्सक खुद ही घर-घर जाकर यह टीके पशुओं को लगाते है, तो उस समय पशुपालक को चाहिए की अपने पशु को टीका जरूर लगवायें।

निष्कर्ष

खेती और पशुपालन एक दूसरे के पूरक है। ज्यादातर किसान छोटे या बड़े स्तर पर पशुपालन से जुड़े हुए है लेकिन दुधारू पशुओं को पालने में छोटी बड़ी समस्याओं से सामना होता ही रहता है। इसलिए पशुपालक को ऊपर बताई गई जानकारी को ध्यान में रखते हुए अपने पशु एवं व्यवसाय को सुरक्षित रखें।

पशुपालन के लिए पशुओं को बरसात के मौसम से बचाने की आवश्यकता होती है ताकि पशुओं से प्राप्त उत्पादन के स्तर को बनाए रखा जा सके एवं पशुपालक को अच्छा मुनाफा मिल सकें।

''रोकथाम ही बचाव है।''

संदर्भ प्रकाशन एवं पुस्तकें:

1. Hand book of Animal HuWandry and Dairy (ICAR)
2. Live stock in production management– Dr. Jagdish Prasad
3. Dairy Bovine Production–Dr. C.K. Thomas

✡✡

ISSN No. 2583-3316

वर्षा जल संचयन समय की जरुरत

सी. पी. राहंगडाले[1*], संदीप शर्मा[2], प्रदीप लकड़ा[3] एवं सूरज चंद्र पंकज[4]
[1]विभाग : कृषिवानिकी, [2 एवं 3]विभाग : शस्य विज्ञान, [4]विभाग : कृषि विस्तार
कृषि विज्ञान केंद्र, मैनपाट, सुरगुजा इंदिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर
पत्राचारकर्ता : rchhatrapal87@gmail.com

परिचय

पानी की कमी दुनिया भर के देशों के लिए गंभीर चिंताओं में से एक है। 2019 में, चेन्नई ने अंतर्राष्ट्रीय सुर्खियाँ बटोरीं, जब नगर निकायों ने 'डे जीरो' घोषित किया, क्योंकि शहर में भूजलस्तर खत्म हो गया और सभी जलाशय सूख गए। निति आयोग की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर भारत में जल संरक्षण के तरीकों को नहीं अपनाया गया, तो बेंगलुरु, दिल्ली और हैदराबाद सहित अन्य 20 शहर अगले कुछ वर्षों में भूजल स्तर बिल्कुल गिर जायेगा। इस विकट स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय पानी बचाने के सार्वभौमिक तरीकों को अपनाना है।

वर्षा जल संग्रहण सभी क्षेत्रों के लोगों के लिये आवश्यक है। वर्षा जल संचयन द्वारा सतह से बारिश के पानी को इकट्ठा किया जाता है। यह बहुत ही असरदार और पारम्परिक तकनीक है। इससे छोटे तालाबों, भूमिगत टैंकों, बाँध आदि के द्वारा जल संरक्षण किया जा सकता है। भूमिगत पुनर्भरण तकनीक जल संग्रहण का एक नया तरीका है। इसे कुआँ, गड्ढा, खाई खोदकर, हैण्डपम्प और पुराने कुएँ को दोबारा चार्ज करके किया जा सकता है। पहले गाँवों और नगरों की सीमा पर या कहीं नीची सतह पर तालाब अवश्य होते थे, जिनमें स्वाभाविक रूप से मानसून की वर्षा का जल एकत्रित हो जाता था। यह जल पूरे गाँव के पशुओं, खेतों एवं गाँवों के घरेलू कार्यों आदि के काम में आता था। अतः जरूरी है कि गाँवों और नगरों में छोटे-बड़े तालाब बनाकर वर्षा जल का संरक्षण किया जाय। मोहल्ला, नगरों और महानगरों में घरों की नालियों के पानी को गड्ढे बनाकर एकत्र किया जाय। घर की छत पर वर्षा जल एकत्रित करने के लिये एक या दो टंकी बनाकर उन्हें मजबूत जाल या फिल्टर करके कपड़े से ढका जाय तो जल संरक्षण किया जा सकेगा।

जल के संकट को देखते हुए आज समुद्र के खारे जल को पीने योग्य बनाया जा रहा है। जंगल कटने पर वाष्पीकरण न होने से वर्षा नहीं हो पाती है इसलिए वृक्षारोपण जल संग्रहण में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्तमान में पानी का उपयोग घर, कृषि और कारखानों के क्षेत्र में अत्यधिक हो रहा है। आज शहरी क्षेत्रों में भी कई कारखानों में पानी का उपयोग होने के कारण पानी की किल्लत होने लगी है। ऐसे में कृषि, घरेलू और व्यावसायिक उपयोग के लिए वर्षा जल को संरक्षित करना सबसे आसान और बेहतरीन तरीका माना जा रहा है। वर्षा जल संचयन या रेन वाटर हार्वेस्टिंग एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें वर्षा के जल को संग्रहित किया जाता है और बाद में इसी जल को जरूरत की चीजों में उपयोग किया जा सकता हैं।

जल संचयन एवं संरक्षण के लाभ

वर्षा जल संचयन प्रणाली का उपयोग सभी वर्गों को लाभ प्रदान करता है। वर्षा जल संचयन एक स्वतंत्र जल आपूर्ति प्रदान करता है। विकसित देशों में वर्षा जल को अक्सर मुख्य स्रोत के अतिरिक्त पानी के पूरक स्रेत के रूप में उपयोग करने के लिए एकत्र किया जाता है। वर्षा जल संचयन में निनलिखित लाभ हैं—

- वर्षा जल संचयन द्वारा घरेलू काम के लिए ज्यादा से ज्यादा जल बचा सकते हैं और इस पानी को कपड़े साफ करने, खाना पकाने, घर साफ करने तथा नहाने के उपयोग में लाया जा सकता है।
- वर्षा जल संग्रहण के द्वारा जलापूर्ति न्यूनतम लागत में संभव हो जाती हैं।
- बड़े-बड़े कारखानों में स्वच्छ जल को इस्तेमाल कर बर्बाद किया जाता है। ऐसे में वर्षा जल का संचयन करके उपयोग में लेना जल सुरक्षित करने का बेहतरीन उपाय है। ज्यादा से ज्यादा पानी की बचत और जल संचयन करने के लिए दिये हुए तरीकों का उपयोग कंपनियाँ कर सकती हैं।
- आज दुनिया आधुनिक तकनीकों से जुड़ी हुई है। बढ़ती जनसंख्या के कारण विश्व के हर एक क्षेत्र में बड़ी-बड़ी इमारतों का निर्माण हो रहा है। ऐसे में वर्षा जल सचंयन के माध्यम से जल को बचाया जा सकता है।

- वर्षा जल किसानों के लिए सबसे कारगर साबित हुआ है, ज्यादातर किसान गर्मियों के महीने में बहुत ही आसानी से जल संचय द्वारा जल संकट को दूर कर पटवन का काम कर सकते हैं।
- अधिकाधिक प्राकृतिक जल को इस्तेमाल करने से स्वच्छ पीने योग्य पानी को हम बचा सकते हैं। वर्षा को शौचालय, नहाने और बर्तन धोने के काम में लिया जा सकता है
- वर्षा जल संग्रहण से प्राप्त जल हर प्रकार के घातक लवणों आदि से मुक्त होता है और इस तरह से इससे हमे उच्च गुणवत्ता एवं रसायनमुक्त शुद्ध जल की प्राप्ति होती है।
- वर्षा जल संग्रहण के द्वारा बाढ़ के वेग पर नियंत्रण से मृदा अपरदन कम से कम किया जा सकता है।
- वर्षा जल संग्रहण, जल के मुख्य स्रोत का काम करता है तथा इसके द्वारा सभी जीवों को समुचित मात्रा में जल उपलब्ध कराया जा सकता है।
- जमीन के अन्दर संग्रहीत जल का वाष्पीकरण नहीं होता है। अतः पानी के समाप्त होने की सम्भावना कम ही रहती है।

वर्षा जल संचयन के उपाय

वर्षा जल संचयन करने के बहुत से उपाय हैं। इनमें से कुछ उपाय वर्षा जल का संचयन करने में बहुत ही कारगर साबित हुए हैं। संचयन किए हुए वर्षा जल को हम घरेलू एवं कृषि उपयोग में ला सकते हैं और कुछ तरीकों से बचाए हुए पानी का हम औद्योगिक क्षेत्रो में भी उपयोग कर सकते हैं। वर्षा जल संचयन के निम्नलिखित उपाय हैं।

(क) सतह जल संग्रह सिस्टम

सतह जल वह पानी होता है, जो वर्षा के बाद जमीन पर गिर कर धरती के निचले तल में बहकर जाने लगता है। गंदी नालियों में जाने से पहले सतह जल को रोकने की प्रक्रिया को सतह जल संग्रह कहा जाता है। बड़े-बड़े पाइपों के माध्यम से वर्षा जल को कुएँ, नदी और तालाबों में जमा करके रखा जाता है, जो बाद में जल के संकट को दूर करता है।

(ख) छत के पानी का एकत्रीकरण

वर्षा जल संचयन या वर्षा जल संग्रहण की इस प्रणाली में घर, विद्यालयों व कार्यालयों के छतों पर गिरने वाले वर्षा जल को एल्युमिनियम, आयरन या कंक्रीट की बनी टंकियों में एकत्रित कर घरेलू प्रयोग में लाया जाता है या भूजल रिचार्ज संरचना से जोड़ कर भूजल स्तर को बढ़ाने में प्रयोग किया जाता है। यह पानी स्वच्छ होता है, जो थोड़ा बहुत ब्लीचिंग पाउडर मिलाने के बाद पूर्ण तरीके से उपयोग में लाया जा सकता है।

(ग) बाँध बनाकर एकत्रीकरण

बड़े-बड़े बाँधों के माध्यम से वर्षा जल को बहुत ही बड़े पैमाने पर रोका जाता है, जिन्हें गर्मी के महीनों में या पानी की कमी होने पर कृषि, बिजली उत्पादन और पाइपों के माध्यम से घरेलू उपयोग में भी इस्तेमाल किया जाता है। जल संरक्षण के मामले में बाँध बहुत कारगर साबित हुए हैं, इसलिए भारत में कई बाँधों का निर्माण किया गया है, साथ भण्डारण ही नए बाँध भी बनाए जा रहे हैं।

(घ) भूमिगत टैंक बनाकर

भूमिगत टैंक का निर्माण जल संग्रहण का उत्तम तरीका है, जिसके माध्यम से हम भूमि के अंदर पानी को संरक्षित रख सकते हैं। इस प्रक्रिया में वर्षा जल को एक भूमिगत गड्ढे में भेज दिया जाता है। इससे भूमिगत जल की मात्रा बढ़ जाती है। साधारण रूप से भूमि के ऊपरी भाग पर बहने वाला जल सूर्य के ताप से भाप बन जाता है और हम उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं परंतु इस तरीके में हम ज्यादा पानी को मिट्टी के अंदर बचाकर रख सकते हैं। यह तरीका बहुत ही मददगार साबित हुआ है, क्योंकि मिट्टी के अंदर का पानी आसानी से नहीं सूखता है और लंबे समय तक पंप के माध्यम से हम इसका उपयोग कर सकते हैं।

(ङ) जल संग्रह जलाशय बनाकर

यह एक साधारण प्रक्रिया है, जिसमें बारिश के पानी को तालाबों और छोटे जल स्रोतों में जमा किया जाता है। इस तरीके से जमा किए हुए जल को ज्यादातर कृषि के कार्यों में लगाया जाता है, क्योंकि यह जल दूषित होता है। जल संग्रह जलाशय, पहाड़ी और रेगिस्तान क्षेत्रों में जल संचयन का प्रभावी तरीका है। जहां ऐसे जलाशयों का निर्माण कर आसानी से बारिश के पानी को इकट्ठा किया जा सकता है।

किसानों द्वारा जल संरक्षण के उपाय

किसान निम्नलिखित विधियों द्वार जल संरक्षण कर सकते हैं।

- कृषि कार्य जैसे ऑफ सीजन जुताई (पहले मानसून की बारिश के पूर्व) मिट्टी के संरक्षण के लिए किया जाता है। यदि भूमि 30 सेमी की गहराई तक जोता जाता है, तो 90 सेमी की गहराई तक नमी हासिल की जा सकती है।
- यदि किसान अन्य कार्य जैसे बीजों की जल्दी बुवाई उर्वरकों का कम उपयोग खरपतवार की निकाई, क्रीट व रोग नियंत्रण और समय पर कटाई करता है, तो मिट्टी में सीमित नमी के बावजूद उपज में वृद्धि होती है।
- कंटूर जुताई, घास और पेड़ों का रोपण पानी के बहाव को रोकता है जो नमी बनाए रखने के साथ मिट्टी की क्षमता में वृद्धि करता है।
- हरी खाद और फसल रोटेशन (मिट्टी और जलवायु आधारित विभिन्न फसलों की खेती जैसे फलियाँ के बाद अनाज लगाना) मिट्टी की नमी को संरक्षित करता है ।
- मिट्टी में जैविक अवशेषों को मिलाने से मिट्टी की नमी का संरक्षण किया जा सकता है।
- वर्षा जल संचयन और छोटे तालाबों में भंडारण गर्मियों के दौरान पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करता है।
- फसलों की सिंचाई क्यारी बनाकर करें।
- सिंचाई की नालियों को पक्का करें।
- बागवानी की सिंचाई हेतु ड्रिप विधि व फसलों हेतु स्प्रिंकलर विधि अपनायें।
- बगीचों में पानी सुबह ही दें, जिससे वाष्पीकरण से होने वाला नुकसान कम किया जा सके।
- जल की कमी वाले क्षेत्रों में ऐसी फसलें बोयें, जिसमें कम पानी की आवश्यकता हो।
- अत्यधिक भूगर्भ जल गिरावट वाले क्षेत्र में फसल चक्र में परिवर्तन कर अधिक जल खपत वाली फसल न उगाई जाये।
- खेतों की मेड़ों को मजबूत व ऊँचा करके खेत का पानी खेत में रिचार्ज होने दें।

वर्षा जल संचयन में महत्वपूर्ण सावधानियाँ

- 'रेन वाटर हार्वेस्टिंग' की मदद से जमा किए हुए जल को इस्तेमाल करने से पहले अच्छी तरह से 'फिल्टर' किया जाना चाहिए, जिससे कि इसमें मौजूद अशुद्धियाँ पानी से अलग हो जाए।
- वर्षा के पानी को ऐसे बर्तन या पात्रों में रखना चाहिए, जो धूप के संपर्क में आने पर जहरीले तत्व न बनाते हों।
- वर्षा जल संचयन द्वारा जमा किए हुए पानी को अच्छे से उबालना बहुत जरूरी होता है, ताकि इसमें मौजूद जहरीले तत्व और बैक्टीरिया नष्ट हो जाए।

निष्कर्ष

वर्षा जल का संग्रहण सभी क्षेत्रों के लोगों के लिए जरूरी है। सतह से वर्षा जल को इकट्ठा करना बहुत ही असरदार और पारंपरिक तकनीक है। इससे छोटे तालाबों, भूमिगत टैंकों, बांध एवं जल संग्रह जलाशय इत्यादि बनाकर जल का संचयन व संरक्षण किया जा सकता है, जिसका उपयोग घरेलु, कृषि उत्पादन, एवं व्यवसायी उपयोग के लिए वर्तमान में किया जा सकता है एवं भविष्य में आने वाली विकट जल संकट जैसी समस्याओं से निपटा जा सकता है। अतः हमें अपने जीवनकाल के कार्य में वर्षा जल संचयन शामिल करना चाहिए, जिससे पानी का संकट दूर हो और आने वाली पीढ़ी को सीख मिल सके एवं पानी की उपलब्धता को बढ़ाया जा सके।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

पलवारीः फल बागानों में मृदा नमी संरक्षण एवं खरपतवार नियन्त्रण की एक उपयोगी तकनीक

पवन कुमार मौर्या[1*] एवं वी.के. त्रिपाठी[2]

[1 एवं 2]फल विज्ञान विभाग, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

पत्राचारकर्ता : pawanmourya8127@gmail.com

परिचय

भारत में कई वर्षों से नई विकसित तकनीकों, संसाधनों एवं उन्नत तरीकों से बागवानी की जा रही है। भारत वर्ष में विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं मृदा पायी जाती है। विषम जलवायु, प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा, ओला, बाढ़ एवं पाला आदि से फसलों को हर साल भारी नुकसान पहुँचता है, जो कि किसानों के लिये एक बड़ी चुनौती है। बागवानी में मृदा नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा मृदा तापमान का संतुलित बनाए रखना भी एक बड़ी चुनौती है। किसान विभिन्न उपायों जैसे सूखी पत्तियाँ, कागज आदि को अपनाकर मृदा में नमी संरक्षण करते है।

पलवार का उपयोग खरपतवार की वृद्धि को रोकने, मृदा नमी संरक्षित करने और खेत की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में भी मदद करता है। जब प्लास्टिक को पलवार के रूप में प्रयोग किया जाता है, तो उसको प्लास्टिक पलवार कहा जाता है।

पलवार के प्रकार

पलवार मुख्यतः दो प्रकार का होता है।

(क) जैविक/कार्बनिक पलवार

(ख) अजैविक अकार्बनिक (प्लास्टिक) पलवार

(क) जैविक/कार्बनिक पलवार

जैविक पलवार वह मल्च होता है, जिसका मृदा में अपघटन (सड़न) हो जाता है। इस तरह के पलवार मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी सहायक होते है। इसके उपयोग से मृदा में जल धारण क्षमता बढ़ जाती है और वायु के संचार में भी वृद्धि होती है। बागानों में फल वृक्षों

स्ट्रावेरी में प्लास्टिक पलवार

स्ट्रावेरी में जैविक पलवार

की चारों तरफ जहाँ तक वृक्षों की छत्रक (कैनोपी) होती है, वहाँ तक बिछा दिया जाता है। पुआल, भूसा, पत्तियाँ, नारियल का बुरादा आदि जैविक या कार्बनिक पलवार के उदाहरण हैं।

(ख) अजैविक अकार्बनिक पलवार

प्राकृतिक पदार्थों का आवश्यक मात्रा में उपलब्ध न होना तथा उनके प्रयोग में अनेक प्रकार की कमियों के कारण अन्य विकल्प की आवश्यकता को ध्यान में रखकर प्लास्टिक मल्च का उपयोग किया जाता है। उदाहरण- पारदर्शी प्लास्टिक, काला प्लास्टिक जरु विभिन्न प्रकार की मोटाई वाले हफ्ते हैं, को उपयोग में लाया जाता है। यह इस पर भी निर्भर करता है कि इसका उपयोग कहाँ किया जा रहा है।

एक आदर्श मल्च के गुण

एक आदर्श मल्च में निम्नलिखित गुण होने चाहिए।

- आसानी से बिछाने योग्य हो।
- स्थानीय स्तर पर उपलब्ध हो।
- प्लास्टिक मल्च ऐसा होना चाहिए, जो शीघ्र बदलना ना पड़े एवं पौधों के लिए हानिकारक न साबित हो।
- पर्यावरण के अनुकूल हो।
- प्रकाश एवं तापक्रम का सुचालक हो।

पलवार के लिए प्लास्टिक के प्रकार

विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक पलवार का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ एल.डी.पी.ई, एच.डी.पी.ई एवं लचीले पी.वी.सी प्लास्टिक का उपयोग किया जाता है। आजकल मुख्यतः एल.एल.डी.पी. आधारित प्लास्टिक पलवार का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक फिल्म विभिन्न रंगों में उपलब्ध होती है जैसे काला, पारदर्शी, पीला और काला।

प्लास्टिक पलवार फिल्म का चयन : प्लास्टिक पलवार फिल्म का चयन खेती की जरूरत के अनुसार जैसे नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण, मृदा तापमान को बढ़ाना, रोग नियंत्रण इत्यादि एवं फसल के प्रकार व उसकी अवधि के अनुसार किया जाता है। खेती की जरूरत के अनुसार प्लास्टिक पलवार का चयन करना चाहिए।

फसल के प्रकार	प्लास्टिक पलवार के प्रकार
बरसात	छिद्रित फ़िल्म
फल वाटिका बगीचा	मोटा मल्चा
मृदा सौरिकरण	पतला एवं पारदर्शी फ़िल्म
सौरिकरण द्वारा खरपतवार	पारदर्शी फ़िल्म
नियंत्रण	
फसलों में खरपतवार नियंत्रण	काली फ़िल्म
गर्मी की फसल	काली फ़िल्म
शीघ्र अंकुरण	काली फ़िल्म

प्लास्टिक पलवार की मोटाई

सामान्यता जब प्लास्टिक पलवार सौरीकरण के लिए उपयोग की जाती है, तो मोटाई पलवार के प्रभाव को प्रभावित नहठ करती है परंतु फसल उत्पादन को फिल्म की मोटाई प्रभावित करती है।

विभिन्न प्रकार के फलों एवं सब्जियों के लिए प्लास्टिक शीट की मोटाई

मोटाई (माइक्रोन)	समय (अवधि)	फसल
25	1 साल	वार्षिक अवधि की सब्जियाँ
50	1 साल	वार्षिक फसल जैसे-केला, अनानास, स्ट्रॉबेरी, पपीता इत्यादि।
100	1 या 2 साल	बहुवर्षीय फसल जैसे- आँवला, लीची, आम, बेर, नींबू, अमरूद, अनार इत्यादि।

प्लास्टिक पलवार की चौड़ाई

यह फसलों की अन्तः पंक्ति दूरी पर निर्भर करती है। सामान्यतः 90 से 180 सेंटीमीटर चौड़ी प्लास्टिक पलवार फिल्म का चयन करना चाहिए।

फल वृक्षों में प्लास्टिक मल्च लगाने की विधि

- प्लास्टिक मल्च का आवरण क्षेत्रफल वृक्षों के छत्रक (कैनोपी) के अनुसार होनी चाहिए।
- छत्रक के अनुसार फ़िल्म को लंबाई में मल्चरोल से काटना चाहिए।

- पौधों के तने पर फिल्म की मजबूत पकड़ के लिए मध्य क्षेत्र में तारानुमा कट लगाना चाहिए।
- आवश्यकतानुसार फ़िल्म को काटने का कार्य खेत में समतल स्थान पर या बाहर साफ एवं स्वच्छ स्थान पर करना चाहिए।
- मल्च बिछाने से पूर्व कैनोपी क्षेत्र की भली भाँति निराई-गुड़ाई कर कंकड़-पत्थर आदि को निकालकर थाले को साफ कर देना चाहिए।
- मल्च बिछाने से पूर्व थाले में पानी का छिड़काव कर देना चाहिए।
- मल्च क्षेत्र की परिधि में छोटी नाली बना लेते हैं, जिससे फ़िल्म को मिट्टी से ढकने में सुविधा हो।
- मल्च फिल्म को कटे हुए भाग तक खोलकर मल्च किए जाने वाले वृक्ष के तने को चारों ओर से घेरते हुए फल वृक्ष के थाले को आच्छादित करना चाहिए।
- फिल्म को चारों ओर से लगभग 5 से 7 इंच मिट्टी से ढक देना चाहिए, जिससे मल्च फिल्म यथास्थान बनी रहे।

प्लास्टिक पलवार को बिछाते समय ध्यान रखने योग्य बातें

- पलवार को बिछाने से पूर्व कृषि क्रियायें जैसे खेत जोतना, खरपतवार हटाना, गोबर की खाद मिलाना एवं सिंचाई जैसे कार्य कर लिए जाने चाहिए।
- प्लास्टिक फिल्म को अधिक नहीं खींचना चाहिए।
- प्लास्टिक फिल्म को अधिक गर्मी वाले दिनों में नहीं बिछाना चाहिए।
- पौधों की रोपाई एवं बीजों की बुवाई पलवार के छिद्रों में करनी चाहिए।

प्लास्टिक पलवार तो बिछाने के बाद सिंचाई प्रबंधन

प्लास्टिक पलवार को बिछाने के बाद खेत में व बाग में सिंचाई और खाद डालने के लिए ड्रिपसिंचाई (बूँद-बूँद) प्रणाली उपयुक्त होती है। यदि ड्रिप सिंचाई संभावना हो, तो एक तरफ से फिल्म को खुला छोड़ कर नाली के सहारे सिंचाई की जा सकती है।

फलों सब्जियों के लिए उपयुक्त पलवार एवं उनका प्रभाव

फसल-फल/ सब्जियाँ	फसल पलवार की मोटाई (माइक्रोन)	उपज में वृद्धि (%)
अमरूद	100	25-30
स्ट्रॉबेरी	25	40-50
अनार	100	25-30
केला	50	35-40
अनानास	50	30
आँवला	100	20-25
नींबू	100	20
मिर्च, भिंडी	25	50-60
आलू, बैंगन	25	30-40
शिमला मिर्च	25	40-50
टमाटर	25	40-50
फूल गोभी	25	40-50

प्लास्टिक पलवार पर सब्सिडी

भारत सरकार द्वारा किसानों को प्लास्टिक पलवार के लिए 50% सब्सिडी प्रदान की जाती है। यदि किसान पलवार का उपयोग एक हेक्टेयर में करता है तो प्रति हेक्टेयर इकाई लागत रु. 20,000 का 50% अधिकतम रु.10,000 प्रति हेक्टेयर सहायता अनुदान दी जाती है। यह सहायता अनुदान राष्ट्रीय उद्यानिकी मिशन व अन्य संबंधित योजनाओं द्वारा प्रदान की जाती है। यह सारी योजनाये राज्य सरकार के द्वारा उद्यानिकी विभाग के अंतर्गत कार्यवाहित की जाती है।

प्लास्टिक पलवार के लाभ

- मृदा में नमी संरक्षण का कार्य करता है।
- खरपतवार नियंत्रण में सहायता करता है।
- प्लास्टिक पलवार मृदा क्षरण को रोकने में सहायक करती है।
- उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार करता है।
- पलवार मृदा के तापमान को बढ़ाती है, जिससे नए बीज का अंकुरण शीघ्र व पौधा जल्दी स्थापित होता है, साथ ही जड़ों का बेहतर विकास होता है।

निष्कर्ष

पलवार मृदा में नमी संरक्षण एवं तापमान नियंत्रण में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त यह पौधों में वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। फसलों के उत्पादन बढ़ावा और खरपतवार नियंत्रण में सहायक होती है। भूमि के उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है और मृदा में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों को भी बढ़ाता है। जो पौधों के वृद्धि में सहायक होते हैं।

पलवार की उपयोगिता उद्यानिक फसलों में अत्यन्त लाभकारी होता है। क्योंकि पलवार खरपतवार को नियमित करता है। शाकभाजी और फलों के उत्पादन में अत्यन्त लाभकारी होता है। पलवार दो प्रकार के होते हैं। पहला कार्बनिक और दूसरा अकार्बनिक। ✡✡

ISSN No. 2583-3316

किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए पपीता हो सकता है एक शसक्त विकल्प

विशाल नाथ[1], सन्तोष कुमार[2], कृष्ण प्रकाश[3] एवं स्वपनिल पाण्डेय[4*]

[1,2 एवं 3]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान झारखंड, गौरिया करमा, हजारीबाग

पत्राचारकर्ता : vishalnath1966@gmail.com

परिचय

पपीता एक शाकीय फलदार पौधा है, जो 8-10 महीने में फलोत्पादन की क्षमता रखता है। स्वास्थ्य और आमदनी के दृष्टि से यह एक बेहतर विकल्प के रूप में उभर कर आया है। देश की मिट्टी और जलवायु पपीता उत्पादन के लिए सर्वथा उचित है। नई किस्मों और वैज्ञानिक तकनीकों के समावेश से इसे अधिक लाभकारी एवं किसानोप्योगी बनाया गया है। उन्नत किस्मों, अच्छे, पौधों, आधुनिक उत्पादन तकनीकों को अपनाकर किसान पपीता उत्पादन से अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। वहीं अब किसान इसकी व्यावसायिक खेती की तरफ उन्मुक्त हो रहे हैं।

फलों में पपीता एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी खेती भारत के किसानों के बीच काफी लोकप्रिय हो रही है। भौगोलिक स्थिति के अनुरूप ज्यादातर राज्यों में इसे आसानी से उगाया जा सकता है और यही कारण है कि भारत विश्व स्तर पर पपीता उत्पादन के अग्रणी देशों में शामिल है। इसकी सफलतापूर्वक बागवानी आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलंगाना एवं तमिलनाडु इत्यादि प्रदेशों में की जाती है। पपीता बहुत ही जल्दी बढ़ने वाला पौधा है जो एक वर्ष में ही फल देने लगता है। भारतवर्ष में पपीता की व्यावसायिक बागवानी के साथ-साथ घरों में रसोई के बगीचे के रूप में भी उगाया जाता है। पका हुआ पपीता सभी लोगों का एक पसंदीदा फल है क्योंकि यह बहुत ही पौष्टिक एवं गुणकारी फल है। इस फल में विटामिन 'ए'(A) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन 'सी' (C) एवं खनिज लवण भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है, जूस आदि बनाये जाते हैं। इस फल को कच्चे एवं पके हुए, दोनों तरीकों से उपयोग में लाया जाता है। पके फल का उपयोग फल, सलाद, ताजा पेय, सौन्दर्य प्रशाधन एवं अनेक परिरक्षित पदार्थ (जैम, जेली, नेक्टर और कैंडीज आदि) बनाने के लिए किया जाता है जबकि हरे फलों को सब्जी के रूप में और टूटी-फ्रूटी बनाने में तथा पपेन उत्पादन के काम आता है। कच्चे फल का उपयोग पेठा, बर्फी, खीर, रायता इत्यादि के लिए भी किया जाता है। कई पोषक तत्वों और एंटीऑक्सीडेंट से समृद्ध फल होने के कारण इसका उच्च औषधीय महत्व भी है। हरे फलों से पपेन टैप किया जाता है, जिसका औद्योगिक उपयोग होता है। पपेन का सौंदर्य जगत तथा उद्योग जगत में व्यापक प्रयोग होता है।

झारखंड समेत पठारी प्रदेशों की उपजाऊ मिट्टी और जलवायु पपीते के खेती के लिए बेहतर पायी गयी है। हाल के वर्षों में यहाँ अधिक संख्या में पपीता की खेती की जाने लगी है जहाँ कुछ दशक पहले तक लोगों के घरों में सिर्फ एक या दो पपीते के पौधे होते थे, जिसके फल का उपयोग परिवार में सब्जी और फल के तौर पर किया जाता था। जैसे-जैसे पपीते की माँग बढ़ रही है वैसे-वैसे झारखण्ड जैसे और दूसरे राज्यों में इसकी व्यावसायिक खेती की जा रही है। पपीता घर के बैकयार्ड से लेकर बड़े-बड़े खेतों में अपनी जगह बना लिया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों एवं अन्य इकाइयों के द्वारा झारखंड के आदिवासी बहुल इलाकों में पपीता की आधुनिक खेती के लिए किसानों को प्रोत्साहित भी किया जा रहा है।

पपीते में आनुवांशिक सुधारः आज की आवश्यकता

पपीता का वानस्पतिक नाम *कैरिका पपाया* (*Carica Papaya*) (2n =18) जो *कैरीकेसी* (*Caricaceae*) परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। संभवतः इसकी उत्पत्ति दक्षिणी मेक्सिको और कोस्टा रिका में हुई, जहाँ से 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्पेनिश और पुर्तगाली नाविकों के द्वारा मलेशिया होते हुए फिलीपींस के रास्ते से भारत लाया गया।

पिछले कुछ वर्षों में पपीते की खेती के कुल क्षेत्रफल में वृद्धि होने के बावजूद इसकी उत्पादकता स्थिर बनी हुई है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्मों का अभाव एक प्रमुख कारण हो सकता हैं। लिंग के आधार पर पपीते में मुख्य रूप से तीन प्रकार के पौधे (मादा, नर और

उभयलिंगी) पाए जाते हैं। जंगली प्रजाति में अधिकांश पौधे एकलिंगाश्रयी होते हैं, हालांकि उन्नत किस्मों के पपीते एकलिंगाश्रयी (मोनोइसियस) या उभयलिंगी (डायोसियास) होते हैं। पपीते के एक समूह में बहुत से लिंग रूप प्रदर्शित होते हैं और इसी कारण से बेहतर प्रजनन की आधुनिक विधियों द्वारा गुणवत्तायुक्त किस्मों का विकास करने की काफी संभावना है किन्तु उन्नत बीजों की गुणवत्ता बनाए रखना एक बहुत बड़ी चुनौती है। आनुवंशिक रूप से श्रेष्ठ माता-पिता की पहचान करना, उन्नत किस्मों के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। किसी वातावरण में पपीते के किसी जीनोटाइप के प्रदर्शन की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करने के लिए उपभेद प्रति प्रदर्शन सबसे सरल एवं प्रभावी तरीका होता है। अच्छे गुण प्रदर्शन वाले नर एवं मादा के बीच संयोजन से प्राप्त पीढ़ियों में अच्छा प्रदर्शन देने की उम्मीद होती है और पीढ़ियों के वंशानुगत पृथक्करण में वांछनीय गुण वाले जीनोटाइप प्राप्त करने की संभावना बढ़ जाती है, जिसका पुनः संयोजन किया जा सकता है। पपीते में आनुवांशिक सुधार मुख्य रूप से प्राकृतिक रूप में उगने वाले स्थानों से जमा किए गए जननद्रव्यों का दोहन कर चयन करने या संकरण के बाद चयन प्रक्रिया पर आधारित है। इसके आगे सुधार करने के लिए पुनसंयीजन प्रजनन या हेटेरोसिस विधि का उपयोग किया जा सकता है।

भारत के पतीते के प्रजनन की शुरूआत

भारत में सबसे पहले पपीता प्रजनन कार्य तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर में 1954 में शुरू किया गया था। उसके बाद 1966 में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र, पूसा, बिहार में पपीते में किस्म विकास का विधिवत कार्य शुरू किया गया। 1970 के शुरुआत में भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा इसमें फसल सुधार कार्यक्रम शुरू किया गया। इन तीन प्रमुख पपीता-प्रजनन स्थानों के अलावा, जी.बी. पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के क्षेत्रीय केंद्र पुणे और कुछ अन्य कृषि विश्वविद्यालयों ने भी 1970 और 1980 के दशक के मध्य पपीते का प्रजनन कार्य शुरू किया। पपीते में आनुवांशिक सुधार एवं प्रजनन का मुख्य उद्देश्य अधिक उपज और गुणवत्ता युक्त फलों वाली कम ऊँचाई की किस्मों, उच्च घनत्व रोपण वाले बागों के लिए स्त्रीलिंगी (गाइनोडायोसियस) किस्मों एवं पपीता के रिंगस्पॉट वायरस (पीआरएसवी) से प्रतिरोधी किस्मों का विकास करना रहा है।

पपीता रिंग स्पॉट वायरस दुनिया भर में पपीते के उत्पादन के लिए सबसे बड़ी समस्या है और यह उत्पादकों के लिए एक बड़ा खतरा भी है। भारत में विभिन्न संस्थानों द्वारा पी.आर.एस.वी. प्रतिरोधी किस्मों के लिए प्रजनन शुरू किया गया एवं कुछ सफलता भी मिली है। कृत्रिम वंश-वृद्धि और आनुवांशिक इंजीनियरिंग की अन्य तकनीकों का उपयोग कैरिका पपीते की प्रमुख बाधाओं को दूर करने के लिए एक संभावित उपकरण के रूप में काम कर सकती है।

पपीता की उन्नत किस्मों का विकास

भारत में पपीते की अत्यधिक जैव विविधता देखी जाती है, फिर भी लगभग 30 किस्में ही मुख्य रूप से खेती में व्यावसायिक रूप से उगायी जाती हैं। भारत में खेती की जाने वाली पपीते की मुख्य किस्मों का विकास वस्तुतः पाँच बागवानी रूपों ('बैंगलोर', 'सीलोन', 'हनी डयू', 'रांची' और 'वाशिंगटन') से हुआ है, जो व्यवस्थित प्रजनन कार्य शुरू करने से पहले ही भारत के विभिन्न भागों में खेती में प्रचलित थीं। अधिकांश आधुनिक किस्मों का विकास या तो पौध चयन द्वारा या माता-पिता में से एक के रूप में उनका उपयोग करके प्राप्त किया गया है। पपीता में बहुविवाह (पॉलीगेमस) प्रकृति होने के कारण प्रतिकूल गुण वाले जटिल यौन अभिव्यक्ति (लिंग प्रदर्शन) और वंशानुक्रम विभिन्नता के उच्च स्तर को दर्शाते हैं जिसके कारण संकरण और फसल सुधार के प्रयासों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जननद्रव्यों में उपलब्ध भिन्नताओं से सीधे चयन और संकरण के बाद चयन विधि अपनाकर पपीते में फसल सुधार का कार्य किया गया है तथा भारत और अन्य जगहों में कुछ प्रगति प्राप्त हुई है और उन्नत किस्में विकसित की गई हैं। कुछ प्रचलित किस्मों का विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

सारणीः भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थाओं द्वारा विकसित पपीता की कुछ उन्नत किस्में

किस्में (प्रति पौधा)	विवरण	उपज क्षमता	विकसित करने वाली अनुसंधान संस्थान
पूसा मेजेस्टी	'रांची' से विकसित गाइनोडायसियस लाइन	38 कि.ग्रा.	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा, बिहार
पूसा जाइंट	'रांची' से सिब-मेटिंग और चयन	40 कि.ग्रा.	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा, बिहार

पूसा डिलीशियस	'रांची' से सिब-मेटिंग	41 कि.ग्रा.	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा, बिहार
पूसा ड्वार्फ	'रांची' से सिब-मेटिंग द्वारा विकसित डायोसियस किस्म	40 कि.ग्रा.	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा, बिहार
पूसा नन्हा	उत्परिवर्ती (म्यूटेंट) किस्म	15 कि.ग्रा.	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा, बिहार
कोयंबटूर 1	'रांची' से एक चयन	70 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 2	एक स्थानीय आबादी से शुद्ध किया गया चयन	75 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 3	कोयंबटूर 2 और सनराइज सोलो का संकर	65 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 4	कोयंबटूर 1 का एक उन्नत किस्म	80 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 5	वाशिंगटन' से एक चयन	78 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 6	'पूसा मेजेस्टी' से एक चयन	60 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 7	'कूर्ग हनी डयू' और 'सीपी 85' का संकर	100 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोयंबटूर 8	एक लाल गूदे वाली डायोसियस किस्म	110 कि.ग्रा.	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
पंत पपीता 1	चयन प्रजनन		जी.बी. पंत विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड
पंत पपीता 2	चयन प्रजनन	40 कि.ग्रा.	जी.बी. पंत विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड
पंत पपीता 3	चयन प्रजनन	50 कि.ग्रा.	जी.बी. पंत विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड
कुर्ग हनी डयू	'हनी डयू' से गाइनोडायोसियस चयन	25 कि.ग्रा.	भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु
पिंक रेड फ्लेशड	गाइनोडायोसियस प्रकार		भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु
अर्का सूर्या	'सनराइज सोलो' और 'पिंक फ्लेश स्वीट' का संकर	60 कि.ग्रा.	भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु
अर्का प्रभात	क्रॉस से उत्पन्न उन्नत पीढ़ी का संकर, ('अर्का सूर्य' और 'तैनुंग 1' का क्रॉस, एवं 'स्थानीय बौना' का संकर)	100 कि.ग्रा.	भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु
पंजाब स्वीट	केन्या से आयातित जननद्रव्यों में सिब मेटिंग	50 कि.ग्रा.	पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना

पपीते के प्रजनन कार्यक्रमों में पॉलीप्लोइडी (बहुगुणित) प्रजनन पर काफी ध्यान दिया गया है। टेट्राप्लोइड पपीते के फल की गुणवत्ता डिप्लोइड (द्विगुणित) की तुलना में बेहतर पायी गयी है। उत्परिवर्तन प्रजनन विधि से एक बौनी किस्म 'पूसा नन्हा' विकसित की गयी है जो सघन रोपण विधि के लिए सर्वोत्तम पायी गयी है। पपीते में हेटेरोसिस एवं संकर शक्ति (हाइब्रिड विगर) का प्रदर्शन, यानी क्रॉस में शामिल सबसे अच्छे माता-पिता की तुलना में संतानों का उत्तम प्रदर्शन देखा गया है। उच्च गुण वाले संकर किस्मों के विकास के लिए, अत्यधिक उत्पादक संकर संयोजनों की पहचान करना बहुत महत्वपूर्ण है और संयोजन क्षमता, जननद्रव्यों की आनुवांशिक विविधता से जुड़ी हुई पायी गयी है। इसका उपयोग करके अधिक उपज एवं अन्य गुणवत्ता वाले किस्मों का विकास संभव हो पाया है। एक हाइलैंड पपीता, वास्कोनसेलिया जो कैरिका पपीता का सबसे करीबी रिश्तेदार माना जाता है, पपाया रिंग स्पॉट वायरस प्रतिरोधी किस्में विकसित करने के लिए एक अच्छा स्रोत हो सकता है। पपीता में व्यक्तिगत चयन से लेकर संकरण एवं उन्नत आणविक प्रजनन विधि अपनाकर भविष्य में पपीते के उन्नत प्रजनन कार्यक्रम को आगे बढ़ाया जा रहा है।

पूर्वी भारत में स्थित एक नवनिर्मित संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान-झारखंड ने भी पपीते के स्थानीय जननद्रव्यों को संग्रहण कर आनुवांशिक सुधार कार्यक्रम की शुरुआत की है। भविष्य की जरूरतों को देखते हुए, पपीते की प्रजातियों में सुधार के लिए स्थानीय जननद्रव्यों का संग्रहण (चित्र 1), आनुवांशिक विभिन्नता की खोज, संरक्षण और चरित्र चित्रण अधिक उपज, बौनी और पैपेन उत्पादन के लिए स्थिर स्त्रीलिंगी (गाइनोडायोसियस) जीनोटाइप का चयन, प्रथम पीढ़ी के संकरों का विकास करके हेटेरोसिस का शोषण एवं विषाणु रोधी और ठंड सहनशील किस्मों का विकास करना मुख्य केन्द्र बिन्दु है।

चित्र-1: पपीते के स्थानीय किस्मों से जननद्रव्यों का संग्रहण

चित्र-2: पपीते के पुष्प का अध्ययन करते भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकगण

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, झारखंड की पहल

भारत, विश्व में पपीते के प्रमुख उत्पादक देशों में होने के बावजूद, यहाँ के किसान ज्यादातर स्थानीय उपलब्ध मिश्रित बीज द्वारा पारंपरिक तरीके से फसल को उगा रहे हैं, जो फसल और फलों के लक्षणों में अत्यधिक परिवर्तनशील होते हैं। स्थानीय किस्मों की खेती और इन किस्मों में वायरल संक्रमण के खिलाफ प्रतिरोध क्षमता कम होने के कारण पपीते में कम उत्पादकता एक समस्या बना हुआ है। इन स्थानीय किस्मों की गुणवत्ता उतनी अच्छी नहीं होती, जितनी की उन्नत किस्मों की होती है। यद्यपि उन्नत किस्में भी रिंग स्पॉट वायरस, लीफ कर्ल और कॉलर रॉट से पीड़ित होती हैं; परन्तु बौनी प्रकृति की नई उन्नत किस्में स्थानीय और लंबी किस्मों की तुलना में रोगों के प्रति काफी सहनशील होती हैं। इन्हीं समस्याओं को ध्यान में रख कर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, झारखंड द्वारा वर्ष 2021 में योजनाबद्ध तरीके से पपीते में आनुवांशिक उन्नयन एवं किस्म विकास का कार्य प्रारम्भ किया गया है (चित्र -2), जहाँ राज्य के विभिन्न जैव विविधता में धनी क्षेत्रों से मुक्त परागित पौधों के फलों से बीजों का संग्रहण करके, उनसे पौध तैयार करके, जुलाई 2021 में बड़े पैमाने पर रोपित किया गया। इन

चित्र 3: जे एच पी-4 पपीते की एक उदीयमान प्रभेद

पौधों के बढ़वार, वृद्धि के तरीके, पुष्पन एवं फलन की दक्षता, उपज प्रभावित करने वाले लक्षणों के प्रकटीकरण में विभिन्नता देखी गयी। कुल पौध संख्या में से 4-5 ऐसे पौधों को उनके फलन के लक्षण एवं फल गुणवत्ता के आधार पर चिन्हित करके विस्तृत अध्ययनोपरांत जीनोटाइप जे एच पी-4 उपज एवं गुणवत्ता के दृष्टिकोण से बेहतर पाया गया (चित्र-3)। इस उदीयमान किस्म के फलों का वजन 1.2-1.5 कि.ग्रा., गूदे का रंग नारंगी एवं मिठास 18° ब्रिक्स होता है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है, जिसके पौधे 2-3 माह में फल देने लगते है और प्रति पौधा 70-80 फल धरण करता है। प्रथम वर्ष में इसकी उपज लगभग 120-125 टन प्रति हेक्टेयर होती है। इस प्रजाति के एकल फल संतति का विस्तृत मूल्यांकन जारी है।

पपीते की उन्नत खेती

सटीक ज्ञान एवं उचित मार्गदर्शन से पपीता की खेती करने से कम लागत में प्रति इकाई अधिक उत्पादन किया जा सकता है। इसकी खेती मुख्य रूप से उष्ण कटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों में होती है। इसकी उन्नत खेती के लिए गरम नमीयुक्त जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। पपीते का पौधा अधिकतम 38-44 डिग्री सेल्सियस तक तापमान सहन कर सकता है, जबकि न्यूनतम तापमान 5 डिग्री सेल्सियस से कम नही होना चाहिए। लू तथा पाले से पपीते को बहुत नुकसान होता है। यह सभी प्रकार की मिट्टी मे लगाई जा सकती है किन्तु उचित जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी, जो कार्बनिक तत्वों से भरपूर हो और जिसका पीएच मान 6.5 से 7.5 के मध्य हो, पपीते की खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है।

पपीते की पौध तैयार करना

पपीते के अच्छी किस्म के बीजों को पहले नर्सरी में लगाकर पौध तैयार किया जाता है। बीजों को क्यारियों, पॉलिथीन की थैलियों, लकड़ी के बक्सों अथवा मिट्टी के गमलों मे लगाया जा सकता है। बीज बोने के लिए मिट्टी में पत्ती की खाद, बालू, तथा सड़ी हुई गोबर की खाद को बराबर मात्रा में मिलाकर मिश्रण तैयार किया जाता है। पौधशाला के लिए ऐसे स्थान जहाँ तेज धूप तथा अधिक छाया न आए, चुनना चाहिए। उत्तरी भारत में नर्सरी में बीज मार्च-अप्रैल तथा जून-अगस्त में उगाने से अच्छे पौधे बनते हैं। स्वस्थ पौधों को निर्धारित दूरी पर पहले से तैयार गड्ढों में जुलाई से सितंबर एवं फरवरी से मार्च में लगाया जाता है। सिंचाई का उचित प्रबंध होने पर अक्टूबर महीने में भी पपीते की रोपाई की जा सकती है। पौधे लगाने से पहले खेत की अच्छी तरह तैयारी करके खेत को समतल कर लेना चाहिए ताकि पानी न भर सकें। पपीता के लिए 50×50×50 सेमी. आकार के गड्ढा खोद लेने चाहिए और प्रत्येक गड्ढे में गोबर की खाद डालकर कम से कम 15 दिनों के लिए खुला छोड़ देना चाहिए ताकि गड्ढों को अच्छी तरह धूप लग जाए और हानिकारक कीड़े-मकौडे व रोगाणु आदि नष्ट हो जायें।

पपीता जल्दी फल देना शुरू कर देता है, इसलिए इसे अधिक उपजाऊ भूमि की जरुरत होती है। पपीते की खेती के

लिए पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा क्रमशः 250 ग्राम, 150 ग्राम और 250 ग्राम, प्रति वर्ष प्रति पौधा निर्धारित की गयी है। फॉस्फोरस व पोटाश की आधी-आधी मात्रा दो बार में देनी चाहिए। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए प्रतिवर्ष प्रति पौधा 20-25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, एक कि.ग्रा. बोनमिल और नीम खाली की जरूरत पड़ती है। खाद की इस मात्रा को समान अनुपात में बाँट कर वर्ष में तीन बार (मार्च-अप्रैल, जुलाई-अगस्त और अक्टूबर) के महीने में देना चाहिए। पपीते के बगीचे में खरपतवारों से बचाव के लिए जरुरत के मुताबिक निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए। पौधों को विभिन्न प्रकार के रोगों से बचाने के लिए समय समय पर उचित देखभाल करनी चाहिए। पपीते की खेती के साथ ही अंतःवर्तीय फसलों को भी बोया जा सकता है। दलहनी फसलों जैसे मटर, मेथी, चना, फ्रेंचबीन व सोयाबीन आदि की फसल इसके साथ ली जा सकती है लेकिन ध्यान रखें कि मिर्च, टमाटर, बैंगन, भिंडी आदि फसलों को पपीते के पौधों के बीच में अंतःवर्तीय फसल के रूप में न लें क्योंकि इनके लेने से मिट्टी की उर्वरता पर उल्टा असर पड़ता है और रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। पपीते की में टपक (ड्रिप) सिंचाई विधि का उपयोग करने से जल एवं उर्वरक की बचत के साथ-साथ उसकी उपयोग क्षमता में भी वृद्धि होती है तथा पौधों को आवश्यकतानुसार एवं शीघ्र पोषक तत्व उपलब्द्ध होने से उपज तथा गुणवत्ता दोनों में वृद्धि होती है।

पपेन उत्पादन से किसानों कि आय वृद्धि

पपेन कच्चे परन्तु परिपक्व पपीते के फलों से निकलने वाले दूध को सुखाकर बनाया जाता है। पपेन एक प्रोटियोलायटिक एन्जाइम (पाचक एन्जाइम) होता है, जो पेप्सीन की तरह से काम करता है। इसका उपयोग मुख्य रूप से मांस को मुलायम करने, चुइंगम बनाने, प्रसाधन का सामान बनाने, त्वचा के दाग को दूर करने एवं अनेक औषधियों के निर्माण में किया जाता है। पपेन से निर्मित औषधियों का प्रयोग पेट के अल्सर, दस्त, एग्जिमा, कैंसर रोग आदि जैसे गंभीर बीमारियों के इलाज में किया जाता है। इसके अलावा पपेन का प्रयोग मंजन, उन की सफाई आदि में भी किया जाता है। पपेन एक पाचकीय औषधि के रूप में कार्य करता है। इसलिए कच्चे पपीते का सेवन पेट की परेशानियों को दूर करने में सहायक होता है। पपीते से पपेन निकालने की विधि काफी सरल है। पपेन उत्पादन के लिए पपीता उत्पादक किसानों को सही किस्म और फलों की अवस्था का ध्यान रखना जरुरी होता है जिससे पपीते के फलों से अधिक से अधिक दूध निकाला जा सके तथा उसे सुखाकर पपेन बनाया जा सके। पपीते के हरे कच्चे फलों से पपेन निकालने के लिए फल बनने के 2-3 माह के बाद उन फलों पर किसी स्टेनलेस स्टील के काटों अथवा बांस की खपच्चियों से 7-10 से.मी. की लम्बाई में चीरा लगाया जाता है और जब दूध निकलने लगे तब उसे काँच या एलुमिनियम के बर्तन में इकट्ठा कर लिया जाता है। यह ध्यान रहे की चिरा ज्यदा गहरा न हो। फलों पर चीरा लगाने का सबसे उचित समय सुबह के 6 बजे से 12 बजे तक का होता है। एक फल पर 4-5 दिनों के अन्तराल पर 2-3 बार चीरा लगाया जा सकता है जिससे उसका पूरा दूध आसानी से निकल सके। धातु के बर्तन के प्रयोग से पपेन की गुणवता प्रभावित होती है इसलिए इसमें धातु के बर्तन का प्रयोग वर्जित किया गया है। दूध को इक्कठा करके किसी पॉलिथीन की चादर पर धूप में (38 डिग्री. सेंटीग्रेट) के तापमान पर सुखाया जाता है। सुखाने से पहले पपीते के दूध में 350 पीपीएम पोटैशियम मेटाबाइसल्फाइट को अच्छी तरह से मिला कर रखने से पपेन की भंडारण क्षमता बढ़ जाती है। सूखने के बाद पतली चादर की परत जैसा पपेन तैयार हो जाता है। इस सूखे हुए पपेन को चूर करके पॉलिथीन की थैलियों में भरकर किसी अच्छे जगह भंडारित कर लिया जाता है जिसे बाजार की मांग के आधार पर बिक्री किया जा सकता है। साधारनतया पपेन का उत्पादन प्रथम वर्ष में 250-350 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर और द्वितीय वर्ष में 125-150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर अच्छा माना जाता है। तृतीय वर्ष में पपीते की उपज में इतनी गिरावट आ जाती है की पपेन निर्माण सही से नहीं हो पाता। पपीते के फलों से दूध निकालने और पपेन बनाने से फलों के पकने और उसके स्वाद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिए पपेन निकालने के बाद पपीते के फलों को बाजार में अच्छे दामों पर बेचा जा सकता है और ये फल ताजे और प्रसंस्कृत (टूटी-फ्रूटी, मुरब्बा, जैम-जेली, प्यूरी आदि बनाने में) दोनों प्रकार से प्रयोग किये जा सकते हैं।

झारखंड मे पपीता उत्पादन की अपार सम्भावनायें

झारखंड में फलों की महत्त्वपूर्ण फसलों में से एक पपीता मुख्य रूप से राज्य में घरों के पिछवाड़े बगीचों में उगाया जाता है। भले ही पपीता किसानों द्वारा वासभूमि में उगाया और खाया जा रहा हो, लेकिन राज्य के आदिवासी किसानों के बीच वैज्ञानिक पपीता की खेती के प्रति जागरूकता बढ़ी है। छोटा नागपुर क्षेत्र पपीते के लिए काफी प्रसिद्ध है।

यहाँ की स्थानीय प्रचलित किस्में उत्तम गुणों वाली तथा पैदावार में काफी वृद्धि देनी वाली होती है। हाल के वर्षों में पपीता की खेती की ओर किसानों के बढ़ते रुझान और आदिवासी किसानों के बीच उद्यमिता विकास के अवसर को देखते हुए गुमला, लातेहार, लोहरदगा एवं राँची आदि जिले के किसानों के बीच भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों एवं अन्य इकाईयों के सहयोग से आधुनिक खेती के लिए किसानों को ट्रेनिंग के साथ साथ बीज एवं अन्य साधन उपलब्ध कराये जा रहे हैं एवं मार्केटिंग के लिए भी प्रोत्साहित भी किया जा रहा है। पपीते की स्थानीय किस्मों के साथ-साथ ताइवानी पपीते की खेती से यहाँ के किसान अधिक आय प्राप्त कर रहे हैं। इन इलाकों में परंपरागत फसलों के बजाय पपीते की खेती आज के समय मे कहीं ज्याादा फायदेमंद साबित हो रही है।

निष्कर्ष

पपीता जल्द फलने वाला एक फल पौधा है, जो एक वर्ष में उपज देने में सक्षम है। इसकी वैज्ञानिक खेती द्वारा किसानों को अधिक आमदनी प्राप्त होती है। पपेन उत्पादन, फल प्रसंस्करण एवं व्यवस्थित बाजार व्यवस्था द्वारा इससे और भी अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अतः किसानों को सलाह दी जाती है कि पपीता कि उन्नत किस्म का चयन करके वैज्ञानिक तरीके से इसकी बड़े पैमाने पर खेती करें और अपनी आमदनी के साथ-साथ स्वास्थ्य को भी सुनिश्चित करें।

✡✡

नवयुग में मृदा अस्वस्थताः कारण और उपाय

कृष्णा कौशिको[1]* एवं केदार महादेव घेवारे[2]

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ उत्तर प्रदेश

[2]उद्यान विज्ञान विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू

पत्राचारकर्ता : kaushikkrishnarom @gmail.com

परिचय

मृदा भूपृष्ठ पर मिलने वाले असंगठित पदार्थों की वह ऊपरी परत है, जो मूल रूप से चट्टानों के विखंडन, वनस्पति जीवों के सड़ने गलने तथा जलवायु की क्रिया से निर्मित अम्लीय पदार्थों से लाखों वर्षा की प्रक्रिया के बाद मिट्टी का रूप लेती है, अमेरिकी मृदा विशेषज्ञ डॉ0 बैनेट के अनुसार, ''आसान भाषा में कहा जाय तो पृथ्वी की सबसे ऊपरी सतह की उथली परतों को मृदा या मिट्टी कहा जाता है।''

हमारा भारत देश वैदिक काल से ही जलवायु तथा मृदा का धनी रहा है। भारत में प्रमुख रूप से आठ प्रकार की मृदा पाई जाती है, क्योंकि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने भारत की मिट्टी को आठ वर्गों में विभाजित किया है जो कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाती है, जो कि इस प्रकार है, जलोढ़ मिट्टी (उत्तर का मैदान गंगा का क्षेत्र सिंध का मैदान, ब्रह्मपुत्र का मैदान, गोदावरी का मैदान, कावेरी का मैदान आदि), काली मिट्टी (महाराष्ट्र, छत्तीसगढ, मध्य प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के कुछ हिस्से), लाल मिट्टी (लगभग पूरे तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, महाराष्ट्र और उड़ीसा के कुछ हिस्से), लेटेराइट मिट्टी (आमतौर पर केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा और असम के पहाड़ी क्षेत्र), शुष्क मिट्टी एवं लवणीय मिट्टी (पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी राजस्थान एवं केरल के तटवर्ती क्षेत्र), जीव मृदा (केरल, उत्तराखण्ड एवं पश्चिम बंगाल) तथा वन मृदा पाई जाती है। दुनिया के किसी भी देश में एक साथ इतनी प्रकार की मिट्टी नहीं पाई जाती है जिसके फलस्वरूप यहाँ पर सभी प्रकार की फसलों की खेती करना संभव हो पाता है। मृदा तथा जलवायु कि इतनी विविधता होने के बाद भी हमारे देश में कुछ किसान वैज्ञानिक विधि द्वारा खेती पर पूर्ण विश्वास नहीं करते हैं और वे परम्परागत विधि द्वारा ही खेती करते है और यह विधि पीढ़ी दर पीढी अपनायी जा रही है। परिणामस्वरूप ये किसान सिर्फ पेटभर अनाज पैदा कर रहे हैं। अपितु हमारे देश द्वारा आधुनिकीकरण पर बल देने के कारण हमारी मृदा का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन हाल बुरा होता जा रहा है, जिस वजह से भूमि की उपजाऊ क्षमता गिरती जा रही है। भारत हमेशा से ही कृषि प्रधान देश रहा है क्योंकि भारत कि 75 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन यापन करती है तथा प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है परन्तु फिर भी हमारे कृषक कृषि करने के वैज्ञानिक तरीकों से अनभिज्ञ है। जिसकी वजह से बढ़ती आबादी का करना बेहद की मुश्किल हो चुका है। भारत में अधिक उपज देने वाली भूमि पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में पाई जाती है, जिनमें खनिज लवणों की अधिकता पाई जाती थी परन्तु आधुनिकीकरण के चलते कृत्रिम रासायनिक खादों के अधिकाधिक उपयोग से मृदा के स्वास्थ्य के साथ अन्याय किया जा रहा है। अधिक रासायनिक खाद तथा कीटनाशकों के उपयोग के कारण ही आज यह स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि मृदा वैज्ञानिकों ने मृदा परीक्षण के गत कुछ वर्षो के संकलित आंकड़ों के आधार पर यह घोषणा की है कि पंजाब एवं हरियाणा जैसे राज्यों में अगर अभी भी रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बंद नहीं हुआ तो वहाँ की भूमि की उपजाऊ क्षमता क्षीर्ण हो जायेगी और धीरे-धीरे कुछ वर्षो में फसल की उपज में भारी गिरावट का भी सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार मृदा अस्वस्थता का संकट पूरे देश में व्याप्त है, यदि अब इस पर अभी गौर नहीं किया गया तो यह कहा जा सका है कि—

''हमारी आने वाली पीढ़ के पास भूमि तो होगी लेकिन खाने के लिए अन्न नहीं''

मृदा की महत्वता

हमारे देश में मिट्टी का अत्याधिक महत्व है, क्योंकि मिट्टी के बिना कोई भी काम करन सम्भव नहीं है। मिट्टी के बिना आप किसी भी इमारत को नहीं तैयार कर सकते। इसके अलावा जब बात आ जाये खेती की तो मिट्टी की महत्वता और भी अधिक बढ़ जाती है, जिससे किसानों द्वारा फसलों को तैयार किया

जाता है। कहा जाय तो मिट्टी हमारे जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसके बिना हमारा जीवन जीना असम्भव माना जाता है। मिट्टी हमारा प्रमुख प्राकृतिक और आर्थिक संसाधन है। समस्त मानव जीवन मिट्टी पर निर्भर करता है। समस्त प्राणियों का भोजन प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी से प्राप्त होता है। हमारे जीवन के निर्माण में प्रयुक्त कपास, रेशम तथा जूट प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें मिट्टी से ही मिलती है। मानव जीवन की पूर्ति करने वाले संसाधनों को कृषक द्वारा भूमि पर ही पैदा किया जाता है। पौधों के विकास के लिए उपजाऊ मिट्टी ही एक अच्छा माध्यम है तथा मृदा का उर्वरक होना आवश्यक है क्योंकि भूमि की उर्वरता अधिक होने पर पौधों का विकास तथा वृद्धि भी भली प्रकार होती है, जिससे अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

''मृदा मानव जीवन का आधार है।''

मृदा अस्वस्थता

मृदा में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के तत्वों तथा खनिजों का उनकी विशिष्ट मात्रा में पाया जाना ही किसी पौधे अथवा फसल के लिए लाभप्रद होता है। जब यह मात्रा अत्याधिक अधिक तथा कमी के साथ मिट्टी में पाई जाती है तब यह विषाक्तता को उत्पन्न करती है, जो किसी पौधे के जीवन के लिए तथा उसकी वृद्धि एवं विकास के लिए हानिकारक साबित होती है। दीर्घावधि में यह विषाक्तता मिट्टी क्षमता तथा उसके उपजाऊपन पर भी विपरीत प्रभाव डालती है।

मृदा अस्वस्थता से हानियाँ

(क) मिट्टी की जनन क्षमता में कमी

(ख) मिट्टी की उत्पादक्ता में कमी

(ग) भूमिगत जल का दूषित होना

(घ) मृदा उर्वरता में असंतुलन

(ङ) मानव जीवनोपयोगी संसाधनों जैसे खाद्य पदार्थों की पोषणता में असंतुलन

(च) खाद्य पदार्थों का विषाक्त होना

(छ) पोषक तत्व तथा जल धारण करने की क्षमता में कमी

मृदा अस्वस्थता के कारण

मृदा के अस्वस्थ होने के कई कारण इस नव युग में विख्यात है जिन्हें हम सभी भली प्रकार जानते हैं उनमें से कुछ कारण हमारे द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं जो कि इस प्रकार है। वैज्ञानिक तरीके से खेत न करना, मानव निर्मित रसायनों का उपयोग, रासायनिक खादों का उपयोग, मृदा में कार्बनिक तत्वों की कमी, मृदा प्रदूषण, शहरीकरण, आधनिकीकरण, मृदा अपरदन एवं मृदा खनन आदि। यह सभी कारण प्रमुख रूप से मृदा को हानि पहुँचाते हैं और यह सभी कारण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से कृषक से सम्बन्धित हैं।

मृदा अस्वस्थता दूर करने के उपाय

मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए निम्न प्रकार की खेती की विधियों को अपनाना चाहिये जैसे जैविक खेती, आधुनिक खेती, स्थाई खेती तथा भारत सरकार के द्वारा चलाई जा रही विभिन्न प्रकार की योजनाओं के प्रति सजग रहते हुए समय-समय पर उनका उपयोग कर मृदा के स्वास्थ्य की जानकारी लेना तथा उस आधार पर फसल चक्र, फसल, तथा पोषकतत्वों का चुनाव कर प्रयोग में लेना। इन तरीकों को अपनाकर मृदा स्वास्थ्य को सुधारा जा सकता है। मृदा स्वास्थ्य सुधारने के लिये निम्नलिखित उपाय हैं-

जैविक खेतीः जैविक खेती कृषि की वह विधि है, जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है और जो भूमि की उर्वरा शक्ति के बनाये रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करती है। जैविक खेती अर्थात् कार्बनिक खेती मृदा के स्वास्थ्य का शीघ्रता से ठीक करने की खेती की उत्तम विधि है। जैविक खेती का मुख्य उद्देश्य मृदा पर्यावरण का संरक्षण एवं पुनर्भरण करना है तथा इसके जैविक, भौतिक एवं रासायनिक स्वरूप को पुर्नस्थापित करना है। जैविक खेती के उपयोग से किसान को दूरगामी लाभ प्राप्त होता है एवं उत्पादन लागत भी 25-30 प्रतिशत कम हो जाती है साथ ही यह भूमि की गुणवत्ता एवं उर्वरता बढ़ाकर, भूमि में कार्बन अवशेष की मात्रा को भी बढ़ाता है। इसके द्वारा फसल की उत्पादकता एवं उत्पादन बढ़ने के साथ ही स्वस्थ फसल प्राप्त होती है।

आधुनिक खेतीः आधुनिक खेती का अर्थ कृषि की वह उन्नत एवं वैज्ञानिक पद्धति से है, जिसमें फसलों का उत्पादन आधुनिक कृषि यंत्रों, रासायनों, उन्नतशील बीजों के साथ ही साथ फसलों पर लगने वाले विभिन्न प्रकार के रोगों एवं कीटों को नियंत्रण आधुनिक तौर से करते हुऐ भरपूर पैदावार प्राप्त किया जाता है। आधुनिक कृषि ऐसी नवप्रवर्तन शैली और कृषि पद्धति है जिसमें स्वदेशी ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान, खरपतवार नियंत्रण, पौध संरक्षण, फसलोत्तर प्रबंधन, फसल

की कटाई आदि जैसी महत्वपूर्ण कृषि पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। आधुनिक कृषि का मुख्य उद्देश्य अच्छी फसल के साथ-साथ वायु, जल, भूमि व मानवीय स्वास्थ्य का संरक्षण है।

इसलिए जैविक खेती दूरगामी परिणामों के लिए अपनाना ठीक है परन्तु पूर्ण रूप से जैविक खेती पर निर्भरता ठीक नहीं रहेगी। इसलिए हमें जैविक खेती के साथ-साथ कृषि को आधुनिक भी बनाना होगा ओर आधुनिक खेती की ओर एक कदम बढ़ाना होगा।

स्थाई खेतीः डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन के कथन अनुसार परिवर्तित पर्यावरण अर्थात् धरती के तापमान में वृद्धि, समुद्र के जलस्तर में बढोत्तरी एवं ओजोन कि परत में क्षति आदि नई उत्पन्न विषमताओ को टिकाऊपन देने के साथ-साथ विश्व कि बढ़ती आबादी को अन्न की पूर्ति के लिए उत्पादकता के स्तर पर क्रमगत वृद्धि करना ही टिकाऊ खेती अर्थात् स्थाई खेती कहलाती है।

आइ.सी.ए.आर. के अनुसार, ''प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता को स्थिर बनाय रखने या उनमें सुधार करते हुये मानव कि बदलती आवश्यकताओं कि संतोषजनक पूर्ति करने हेतु उपलब्ध संसाधनों का सफलतापूर्वक सदुपयोग करना ही स्थाई कृषि कहलाती है।''

वह विधि जो संश्लेषित उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अनुप्रयोग अथवा न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बचाए रखने के लिए फसल चक्र, हरी खाद, कंपोस्ट आदि का प्रयोग करती है स्थाई कृषि अथवा टिकाऊ खेती कहलाती है। कृषि की इस विधि के अन्तर्गत कृषि उत्पादन, मृदा उत्पादकता तथा पर्यावरण संरक्षण का एक साथ समावेशन करने हेतु एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, एकीकृत नाशजीव प्रबंधन, एकीकृत कीट प्रबंधन, एकीकृत खरपतवार प्रबंधन, कृषि वानिकी तथा पशुपालन की आधुनिक विधियों का एक साथ प्रबंधन करना बताया गया है। अतः स्थाई खेती के उपयोग से नवयुग में बढ़ रहे आधुनिकी कारण की वजह से उत्पन्न हो रही मृदा की समस्या तथा पर्यावरण संरक्षण के उपायों को एक साथ साधा जा सकता है भारत सरकार के द्वारा भी कुछ योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है, जिससे मृदा के स्वास्थ्य से साथ-साथ फसल की उपज को तथा किसानों कि आय को भी बढ़ाया जा सके। मृदा स्वास्थ्य सुधार के प्रयास में भारत सरकार, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय एवं कृषि सहकारिता और किसान कल्याण विभाग के द्वारा प्रकाशित की जा रही वार्षिक पत्रिका सरकारी योजनाओं एव कार्यक्रमों की किसान के लिए मार्गदर्शिका में सरकार के द्वारा क्रियान्वित की जा रही मृदा स्वास्थ्य कार्ड, भूमि संरक्षण, सूक्ष्म तत्व, जैविक खेती एव परम्परागत कृषि विकास योजना जैसी योजनाओं का विवरण किया गया है।

मृदा स्वास्थ्य कार्डः 19 फरवरी 2015 को मृदा स्वास्थ्य कार्ड अन्तर्गत शुरू हुई। मृदा स्वास्थ्य कार्ड सभी जोत धारकों को हर दो वर्ष के अन्तराल के बाद दिये जायेंगे ताकि वे फसल पैदावार लेने के लिए सिफारिश किए गये पोषक तत्व डाले जाकि मृदा स्वास्थ्य में सुधार हो और भूमि की उपजाऊ शक्ति भी बढ़े।

सारणी सं. 1 मिट्टी सुधार के लिये भारत सरकार के द्वारा दी जाने वाली सहायता

क्र.सं.	सहायता का प्रकार	सहायता का मापदण्ड/अधिकतम सीमा	स्कीम/घटक
1.	सूक्ष्म तत्वों तथा भूमि सुधार तत्वों का वितरण	रु. 2500/- प्रति हेटयर	मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना
2.	जिप्सम/पाईराइट/चूना/डोलोमाइट की आपूति	लागत का 50 प्रतिशत + परिवहन, कुल रु. 750 प्रति हेक्टेयर तक सीमित	राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (तिलहन एवं ऑयल पॉम)
3.	जिप्सम फास्फोजिप्सम / बेन्टोनाइट सल्फर की आपूर्ति (गेहूँ एवं दालें)	लागत का 50 प्रतिशत जो रु. 750/- प्रति हेक्टयर तक सीमित	राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) एवं बी.जी.आर.इ.आइ.
4.	सूक्ष्मपोषक तत्व (धान, गेहूँ, दाले एवं न्यूटी-सिरियल)	लागत का 50 प्रतिशत जो रु. 500/- प्रति हेक्टयर तक सीमित	राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) एवं बी.जी.आर.इ.आइ.

5.	चूना/चूनायुक्त सामग्री (धान/दालें)	लागत का 50 प्रतिशत जो रु. 1,000/- प्रति हेक्टेयर तक सीमित	राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) एवं बी.जी.आर.इ.आइ.
6.	जैव उर्वरक (दालें एवं न्यूटी-सिरियल)	लागत का 50 प्रतिशत जो रु. 300/- प्रति हेक्टेयर तक सीमित	राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) एवं बी.जी.आर.इ.आइ.
7.	जैविक खेती अपनाने के लिए	रु. 10,000 प्रति हेक्टेयर 4 हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए प्रति हेक्टेयर की सहायता से 3 साल के लिए सहायता। पहले वर्ष में रु. 4000/- दूसरे और तीसरे वर्ष में रु. 3000।	राष्ट्रीय बागवान मिशन/ पूर्वोत्तर एवं हिमालयन राज्यों के लिए बागवानी मिशन संमेकित बागवानी विकास मिशन के अन्तर्गत उप योजना।
8.	समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए प्रोत्साहन	रु. 1200/- प्रति हेक्टेयर (4 हेक्टेयर तक)	राष्ट्रीय बागवानी मिशन/ पूर्वोत्तर एवं हिमालयन राज्यों के लिए बागवानी मिशन समेकित बागवानी विकास मिशन के अन्तर्गत उप योजना।
9.	नई मोबाइल/अचल मृदा जांच प्रयोगशाला (एमएसटीएल/एस एसटीएल) की स्थापना	प्रति वर्ष 10,000 नमूनों का विश्लेषण करने की क्षमता के लिए नाबार्ड के माध्यम से व्यक्तिगत एवं निजी एजेंसियों के लिए लागत का 33 प्रतिशत या 25 लाख तक सीमित/प्रयोगशाला है।	एन.एम.एस.ए
10.	आईसीएआर प्रौद्योगिकी द्वारा विकसित मिनी मृदा परीक्षण	नाबार्ड के माध्यम से प्रति वर्ष 3,000 नमूने विशेुषण करने के लिए प्रति व्यक्ति/ निजी क्षेत्रों के लिए लागत का 4 प्रतिशत या रु. 40,000 प्रति लैब	मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना
11.	गाँव के स्तर पर मृदा परीक्षण परियोजा की स्थापन करना	लागत का 70 प्रतिशत या रु. 3,75,000 तक जो भी मृदा स्वास्थ्य कार्ड कम है।	मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना
12.	समस्या ग्रस्त मृदा का सुधार	क्षारीय/लवणीय मिट्टी रु. 60,000/- प्रति हेक्टेयर अम्लीय मृदा रु. 15,000/- प्रति हेक्टेयर 90 : 10 केन्द्र व उत्तरपूर्वी	आरेवीवाई उपयोजना समस्या ग्रस्त मृदा का सुधार (आर.पी.एस.)

		व हिमालय क्षेत्रों के लिए 60 : 40 केन्द्र व दूसरे उत्तर पूर्वी राज्यों के अलावा हिमालयी राज्यों के लिए	
13.	पौध संरक्षण रसायन	कीटनाशकों, फफूदीनाशकों, खरपतवारनाशी, जैव कीटनाशकों, जैव घटकों, सूक्ष्म पोषक तत्वों, जैव उर्वरक आदि लागत के 50 प्रतिशत की दर से जो रु. 500/- प्रति हेक्टेयर तक सीमित।	राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) एवं बी.जी.आर.इ.आई

स्रोत-सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों की किसान के लिए मार्गदर्शिका 2018-2019

निष्कर्ष

इस आलेख में मृदा स्वास्थ्य सम्बन्धी दर्शाए गए बिन्दुओ के आधार पर सीधे तौर पर कहा जा सकता है कि कृषकों को अपने निकटतम स्थापित कृषि विज्ञान केन्द्र और कृषि विभाग से सम्पर्क साध कर सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का लाभ लेते हुए समय-समय पर मृदा परीक्षण करने के उपरान्त ही वैज्ञानिक तरीके से खेती करना चाहिए तथा पारस्परिक खेती के स्थान पर स्थाई खेती जैसी कृषि की उन्नत विधि प्रयोग करना चाहिए जिससे मृदा स्वास्थ्य, अधिकतम का उपज, भूमि उपजाऊ क्षमता, अधिक गुणवत्ता वाली उपज तथा स्वस्थ पर्यावरण जैसे संकल्पों का एक साथ निर्वहन किया जा सके। इस नव युग में तेजी से हो रहे आधुनिकीकरण के कारण बढ़ रही मृदा अस्वस्थता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि स्थाई अथवा टिकाऊ खेती विधि को कृषकों के द्वारा अपनाया जाए जिससे भविष्य में उत्पन्न मृदा जनन क्षमता और मृदा उपजाऊ क्षमता संकट के विकराल रूप धारण करने से पहले ही उसे टाला जा सके।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

फलदार फसलों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

रवि प्रताप[1*], वी. के. त्रिपाठी[2] एवं जितेंन्द्र कुमार शुक्ला[3]

[2]प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष फल विज्ञान विभाग, उद्यान महाविद्यालय च. शे. आ. कृषि एवं प्रौ. वि. वि. कानपुर

[1एवं3]चं. शे. आ. कृषि एवं प्रौ. वि. वि. कानपुर

पत्राचारकर्ता : ravipratapcsa790@gmail.com

परिचय

ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन आज मानव जाति के लिए प्रमुख समस्या का रूप ले चुका है। मौसम की घटनाओं में आने वाले अत्यधिक बदलाव के फलस्वरुप इस बार अनेक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष बदलाव देखे जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि, ध्रुव, बर्फ का फिसलना समुद्र के जल स्तर में वृद्धि सूखा व बाढ़ की बारम्बारता एवं ओलावृष्टि से फसलो व मानव स्वास्थ्य को गंभीर क्षति हो रही है। जलवायु परिवर्तन का असर फलदार फसलों पर काफी तीव्र होता है। यदि तापमान सामान्य से अधिक या कम होता है तो फसलों को व्यावसायिक उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित होती है। इसी प्रकार जलवायु परिवर्तन से सिंचाई जल की उपलब्धता पर भी प्रभाव पड़ता है। जलवायु परिवर्तन से पादप रोग उत्पन्न करने वाले विभिन्न सूक्ष्मजीवों की संख्या सामान्य से कई गुना ज्यादा बढ़ जाती है, जिससे फलों का उत्पादन बड़े पैमाने पर बाधित होता है। इसलिए जलवायु परिवर्तन परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए फलदार फसलों के स्वास्थ्य के हित के लिए इन्हें ग्लोबल वार्मिंग के कुप्रभाव से बचाने की आवश्यकता है।

भारत में 6.4 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में फल उगाए जाते हैं। इससे लगभग 92.9 मिलियन टन फल उत्पादन होता है। यह वैश्विक उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत है। फलों में आम, केला, संतरा, अमरुद, अंगूर, सेब, पपीता एवं अनार प्रमुख हैं। देश में आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, गुजरात तथा तमिलनाडु प्रमुख फल उत्पादक राज्य हैं। सेब का उत्पादन जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में होता है। भारत में सबसे ज्यादा क्षेत्रफल में आम (2258 हजार हेक्टेयर) व संतरावर्गी फल (1,003 हजार हेक्टेयर) और केला (884 हजार हेक्टेयर) उगाये जाते हैं।

किसी भी क्षेत्र में प्रचलित दीर्घकालीन औसत मौसम उस क्षेत्र की जलवायु परिवर्तन कहलाता है। जलवायु में सतत बदलाव की प्रक्रिया जारी रहती है। परंतु इसे आसानी से अनुभव नहीं किया जा सकता है। यह बदलाव बहुत ही धीरे होता है। धीरे-धीरे सभी जीवित प्राणी बदलाव के साथ सामंजस्य बैठा लेते हैं। पिछले 150 सालों से 200 वर्षों में यह जलवायु परिवर्तन इतनी तेजी से हुआ है कि प्राणी व वनस्पति जगत के लिए इस बदलाव के साथ सामंजस्य बैङ्गा पाना मुश्किल हो रहा है।

चित्र : 1 आम, नीबू वर्गी फलों में फूल, परागण तथा फलों का विकास

चित्र : 2 आम, नींबू वर्गी फलों में फूल, परागण तथा फलों का विकास

जलवायु परिवर्तन के सामान्य प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख प्रभावों में तापमान एवं कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि, सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि, ठंडे प्रदेशों में न्यूनतम तापमान में गिरावट तथा बढ़ोतरी, गर्म हवायें, तूफान आदि शामिल हैं। फसलों की तुलना में फलदार पेड़ इन सभी बदलावों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव खेती पर पड़ता है। तापमान वर्षा आदि में बदलाव आने से मृदा की जैविक क्रियाशीलता तथा उन से फैलने वाले रोग अपने सामान्य तरीके से भिन्न हो जाते हैं। जलवायु परिवर्तन के दौरान कृषि क्षेत्र में फसल उत्पादन की मात्रा व गुणवत्ता में कमी, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट तथा मृदा जैव विविधता में कमी, मृदा पारिस्थितिक तंत्रों में असंतुलन आदि होती है।

फलदार फसलों के लिए नुकसानदायक हैं जलवायु परिवर्तन

भारतीय अर्थव्यवस्था आज भी कृषि पर आधारित है परन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण शीतलहर एवं पाला, लू, चक्रवात एवं बाढ़ आदि के कारण फलदार फसलों पर ही नहीं अपितु अन्य फसलों पर इसका प्रभाव पड़ता है, जो उत्पादकता एवं फसल की गुणवत्ता में कमी लाता है। फलदार फसलों पर जलवायु परिवर्तन से निम्नलिखित नुकसान होते हैं—

- तापमान में वृद्धि के कारण फल समय से पहले परिपक्व हो जाते हैं तथा फल का भंडारण समय घट जाता है।
- वायुमंडली तापमान और वर्षा की अधिकता व तीव्रता से फलों की फसल को नुकसान होता है।
- वायुमंडली कार्बन-डाइ-ऑक्साइड में वृद्धि होने से फसल गुणवत्ता प्रभावित होती है। फलों में प्रोटीन, स्टार्च और ग्लूकोज की मात्रा में वृद्धि होती है।
- फसलों की जल उपयोग क्षमता में वृद्धि लेकिन पानी की उपलब्धता में कमी से फसल पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है।
- फलदार पौधों का त्पादन व गुणवत्ता फूल, परागण तथा फलों का विकास मौसम पर निर्भर करता है। अधिक ठंड और शुष्क जलवायु से फूल लगना प्रभावित होता है। कम तापमान और उच्च आद्रता में फूलों का विकास कम होता है, जिससे वह फलदाई फूलों की संख्या कम हो जाती है। इसके विपरीत अधिक तापमान तथा जल की कमी से फूल अधिक मात्रा में गिरते हैं परिणामस्वरूप फल कम लगते हैं।
- लंबी अवधि तक छाए बादलों की वजह से फलों में मिठास कम हो जाती है।
- बदलती जलवायु परिवर्तनों परिस्थितियों में रोगजनक सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि होने से फलों की फसल को अधिक नुकसान पहुँचता है।

फलदार पौधों को जलवायु परिवर्तन से बचाने के उपाय

जलवायु परिवर्तन से फलदार पौधे पर पड़ने वाले प्रभाव को कम करने के लिए फल उत्पादक निम्नलिखित उपायों के माध्यम से पौधों की सुरक्षा कर सकते हैं।

चित्रः 3 आम समय से पहले परपक्व

चित्रः 4 लीची फल उत्पादन में कमी

- हवा को रोकने के लिए बगीचे के चारों ओर मोटे और लंबे उगने वाले वृक्ष लगायें।
- गर्मी के मौसम में पेड़ों की छटाई ना करें। पेड़ का मुख्य तना और छोटी शाखाओं की सफेद पुताई करने से गर्मी का प्रकोप कम होता है।
- पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए बागों में नियमित तथा उचित सिंचाई करें।
- नये और पुराने थालो में पलवार फैलाने से तापमान नियंत्रित होता है।
- संवेदनशील नए फलों के पौधों को बाग के अंदरूनी हिस्सों में ही लगायें।
- नये बाग में रोपण के लिए ठंड सहिष्णु पौधों को वरीयता दी जानी चाहिए।
- पौधों को मजबूत और अधिक सहिष्णु बनाने के लिए पर्याप्त खाद और उर्वरक का उपयोग करें।
- ठंड के समय में नियमित रूप से बागों की सिंचाई करें।
- अधिक ठंड के समय तापमान नियंत्रित करने के लिए सूखे पत्तों और टहनियों को बागों में जलायें।
- पूर्व और दक्षिण दिशा में लगाए गए पौधे अन्य दिशाओं की तुलना में अधिक प्रभावित होते हैं यह अधिक समय तक सूर्य के प्रकाश के संपर्क में रहते हैं। इसलिए फलों और पौधों को पश्चिम और उत्तर दिशा में लगायें।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन से पर्यावरण में तापमान, कार्बन डाइ-ऑक्साइड की मात्रा, सूखा, ओलावृष्टि, तूफान आदि अनियमिततायें देखने को मिलती हैं, जिसका सीधा प्रभाव फलों की परिपक्वता, फलों की गुणवत्ता, फल उत्पादन एवं उत्पादकता पर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को फल उत्पादन में कम करने के लिए वैज्ञानिक तकनीक का सहारा लिया जा सकता है। जिसमें पेड़ों की छंटाई, नियमित एवं उचित सिंचाई, पर्याप्त खाद एवं उर्वरक का प्रयोग तथा उच्च गुणवत्ता युक्त फलों की प्रजातियों का उपयोग आदि है। इन उपायों को अपनाकर बागबानी किसान अपनी फसल को प्रभावित होने बचा सकते हैं, जिससे प्राप्त उपज अधिक स्वस्थ होते है, जिसे अधिक दिनों तक संग्रहित किया जा सकता है।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

बागवानी में प्लास्टिक मल्चिंग का उपयोग

एन. आर. रंगारे[1]*, डी. पी. शर्मा[2] एवं अन्य रावत[3]

[1,2एवं3]जवाहर लाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

पत्राचारकर्ता : nrrangare@gmail.com

परिचय

वर्तमान जीवन के हर क्षेत्र में प्लास्टिक का उपयोग तेजी बढ़ रहा है। हमारी कृषि भी प्लास्टिक से अछूत नहीं रह पायी है। वर्तमान में कृषि में अच्छी पैदावार लेने के लिए प्लास्टिक सामग्रियों का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। कृषि में प्लास्टिक सामग्रियों का परिचय 1940 के दशक में प्रशिक्षक ई. एम. एम. एम्र द्वारा विकसित किया गया था, जो एक बागवानी के कृषि वैज्ञानिक थे और जिनको प्लास्टिक ग्रीन हाउस के पिता माना जाता है। कृषि में प्लास्टिक के उपयोग को प्लास्टिकचर कहा गया है। यह प्रौद्योगिकी कृषि एवं उद्यानिकी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने काफी लाभप्रद सिद्ध हुई है। प्लास्टीकल्चर, कृषि विकास के हर मुद्दों जैसे जल प्रबंधन, भण्डारण, पैकेजिंग, ऊर्जा संरक्षण, उत्पद ढुलाई, जल निकास, मृदा सुधार आदि में अधिक दृष्टिकोण से फायदेमंद है। कृषि में उपयोग होने वाली प्लास्टिक मुख्यतया कम घनत्व वाली पॉलिथलीन (एल.डी.पी.ई.), इथलीन विनाइल एसीटेट (ई.व्ही.ए.), हाई डेन्सिटी पालिथलीन (एच.डी.पी.ई.), पालीविनाइल क्लोराइड (पी.व्ही.सी.) एवं पालिप्रोपलीन (पी.पी.) आदि हैं।

चित्र : मिट्टी की सतह पर मल्चिंग

पौधों के आसपास की भू-सतह को किसी उपयुक्त सामग्री जैसे पुआल, घास, पत्ती अथवा प्लास्टिक शीट द्वारा ढकने की प्रक्रिया मल्चिंग कहलाती है। जिसका मुख्य उद्देष्य मृदा की सतह में वाष्पोत्सर्जन (इवेपोरेशन) के माध्यम से होने वाली नमी की क्षति के कम करना, खरपतवारों की वृद्धि को अवरोधित करना तथा फसल को दिए जाने वाले खाद व पोषक तत्वों की पूर्ण उपलब्धता पौधों हेतु सुनिश्चित करना है। जब पॉलिथलीन या पी. वी. सी. शीट (फिल्म) से पौध क्षेत्र की मृदा कहा जाता है। प्लास्टिक मल्चिंग के उपयोग से नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण, मृदा सुधार आदि के कारण न केवल फसलोत्पादन बढ़ता है बल्कि उत्पाद की गुणवत्ता भी अच्छी प्राप्त होती है। मल्चिंग के उपयोग से मृदा के तापमान में होने वाली वृद्धि से पौध क्षेत्र में ऐसा सूक्ष्म वातावरण (माइक्रोक्लाइट) निर्मित होता है, जिससे वहाँ कार्बन-डाई-ऑक्साइड की वृद्धि हो जाती है, जो कि पौधों की अच्छी बढ़वार के लिये उपयुक्त होती है।

मल्चिंग फिल्म के प्रकार

प्लास्टिक मल्च मुख्यतः दो प्रकार ही होती है—(क) काली (ब्लैक), (ख) लगभग पारदर्शी (ट्रांसल्यूसेंट)

काली (ब्लैक) प्लास्टिक फिल्म के उपयोग से ठंडे मौसम में व रात के समय मिट्टी की गर्मी सुरक्षित रहती है, जो कि पौधों की बढ़वार में मदद करती है। इसके साथ-साथ यह खरपतवारों के नियंत्रण में भी सहायक होती है।

लगभग पारदर्शी (ट्रांसल्यूसेंट) फिल्म के उपयोग से काली फिल्म के तुलना में मिट्टी का तापमान ज्यादा अच्छा बना रहता है। चूँकि पारदर्शिता का गुण होता है इसमें से इसमें से रोशनी पार हो जाती।

प्लास्टिक मल्चिंग के लाभ

(क) नमी का संरक्षण

खेत में प्लास्टिक फिल्म के उपयोग के उपरांत तापमान में निश्चित बढ़ोत्तरी होती है, जिससे प्लास्टिक शीट के नीचे की मिट्टी से जो पानी भाप बनकर उड़ता है वह फिल्म की निचली सतह पर जम जाता है फिर यह पानी बूँद बनकर मिट्टी में ही गिर जाता है। इस प्रकार मिट्टी की नमी ज्यादा समय तक बनी रहती है परिणामतः फसल को इस संरक्षित नमी का काफी समय तक लाभ मिलता है। इसके अलावा मिट्टी में वर्षा या सिंचाई से भी

नमी पहुँचता है जो कि मल्च के कारण काफी समय तक पौधों के उपयोग हेतु संरक्षित रहती है। वहीं बिना मल्च फिल्म द्वारा ढके गए क्यारी, प्लाट या खेत में नमी शीघ्र ही वाष्पित होकर उड़ जाती है एवं खरपतवार भी काफी मात्रा में बढ जाते हैं फलस्वरूप फसल की पैदावार में विपरीत असर पड़ता है।

(ख) सिंचाई की बाम्बरता में कमी

प्लास्टिक मल्चिंग के उपयोग से सैंच्य क्षेत्र में सिंचाई की बारम्बरता में कमी सुनिश्चित होती है।

(ग) खरपतवारों से बचाव

काली मल्च फिल्म के उपयोग से सूर्य की किरणें मृदा की सतह तक नहीं पहुँचती हैं। अतः खरपतवारों का बढ़ना पूर्णतः अवरोधित हो जाता है।

(घ) मिट्टी में सौरीकरण अर्थात् पूर्ण धूप के गुण पहुँचना

मल्च फिल्म के उपयोग से मृदा में सूर्य की किरणों के गुण बेहतर तरीके से पहुँचते हैं। खरपतवार नियंत्रण में यह प्रक्रिया प्रभावकारी होती है। सोलराइजेशन के कारण हानिकारक सूक्ष्म जीवाणु पौध क्षेत्र में पनप नहीं पाते।

(ङ) अधिक उत्पादन

मल्च के उपयोग से उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार के साथ-साथ फसलोंत्पादन में काफी वृद्धि होती है।

याद रखें

- प्लास्टिक मल्चिंग से पानी की बचत अवश्य होती है लेकिन इससे सिंचाई की जरूरत बिल्कुल समाप्त नहीं होती है।
- प्लास्टिक मल्चिंग का फायदा उस समय सबसे ज्यादा होता है जब मिट्टी में अधिक नमी हो।

मल्च फिल्म बिछाने की विधि

- फसलों में मल्च फिल्म लगाने के सभी फायदे मिल पाना तभी संभव है जब फिल्म को उचित तकनीकी के आधार पर खेत में बिछाया जाय। इस हेतु निम्न बातें ध्यान रखना आवश्यक है।
- ऐसे समय में जब हवा तेज चल रही हो तब मल्च फिल्म न बिछायें। तेज हवा के कारण फिल्म के उड़ने से इसके बिछाने में अधिक समय लगता है साथ ही फिल्म के फटने की संभावना भी बनी रहती है।
- मल्च फिल्म को बिछाते समय इसे ज्यादा तनाव में न रखें किन्तु ध्यान रहे कि मल्च फिल्म और मिट्टी के बीच का अंतर कम से कम हो।
- मल्च फिल्म के किनारों को लगभग 10-15 सेमी. मिट्टी से ढक देना चाहिए ताकि फिल्म उस क्षेत्र में अच्छी प्रकार जमी रहे।
- फसल रोपण के पहले खेत में बनी पट्टिका (बेड) के ऊपर फिल्म बिछा लें एवं सुनिश्चित करें कि उसमें कहीं सिलवट व छेद न हो। इसके बाद पौधों हेतु निर्धारित दूरी पर फिल्म में छेद करने के उपरांत ही छिद्रों पर रोपाई करें।
- फलदार वृक्षों जैसे आम, चीकू, केला, अनार, पपीता आदि में इसे बिछाने के लिए निर्धारित माप का फिल्म का चैकोर टुकड़ा काट लें एवं इसके केन्द्र से तिर्यक दिशा में कैची या चाकू से कट लगा तथा भू-सतह पर पौधे में कट की दिशा से फिल्म को प्रवेश कराकर फिल्म के चारों हिस्सों को मिट्टी में दबा दें। पौधों के आच्छादन (कैनापी) के कुल क्षेत्रफल का 40-60 प्रतिशत भू-भाग मल्च फिल्म से ढकना चाहिए।

चित्र : मशीन मल्चिंग

मल्च बिछाते वक्त बरते जाने वाली सावधनियाँ

- मल्च फिल्म को बिछाने के बाद उसमें ज्यादा तनाव नहीं होना चाहिए अन्यथा मौसम के तापमान में वृद्धि व कृषि क्रियाओं के समय इसके फटने की संभावना बनी रहेगी।

- मल्च फिल्म को सर्वाधिक गर्मी के समय न बिछायें।
- एक बार उपयोग होने के बाद सावधानी पूर्वक लपेटकर रखी गई फिल्म को दुबारा उपयोग में लाया जा सकता है। अतः यह सुनिश्चित करें कि यह फटने न पायें।

निष्कर्ष

प्लास्टिक मल्चिंग के उपयोग न सिर्फ मिट्टी की नमी का संरक्षण होता हैं, बल्कि मिट्टी के पोषक तत्वों की मात्रा बानी रहती हैं। यह कटाव के नुकसान को नियंत्रित करती है, और फसल के पौधों में उगने वाले खरपतवारों को उगने से रोकती हैं और कीटनाशकों और उर्वरकों और भारी धातुओं के अवशिष्ट प्रभावों को दूर करती हैं अतः प्लास्टिक मलचिंग अच्छे उत्पादन के साथ फसलों के आर्थिक मूल्य में सुधार करते हैं, जिससे की किसान भाइयो की आय में मुनाफा हो पाता है।

संदर्भ

- https://www.krishisewa.com/articles/miscellaneous/701-use-of-plastic-mulch-in-agriculture.html
- https://hi.wikipedia.org/wiki%E0%A4%AA%E0%A4%B2%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B0

✡✡

ISSN No. 2583-3316

सोयाबीन के प्रमुख कवक रोग एवं इसका प्रबंधन

विवेक विश्वकर्मा[1*], अभिलाषा ए. लाल[2], एवं सोबिता साइमन[3]

[1,2एवं3]प्लांट पैथोलॉजी विभाग, शुआट्स, प्रयागराज

पत्राचारकर्ता : vivekvms94@gmail.com

परिचय

सोयाबीन *ग्लाइसिन मैक्स (एल.) मेरिल* एक फलीदार फसल है। भारत में मूँगफली बाद सोयाबीन तिलहन की दूसरी सबसे बड़ी फसल है। सोयाबीन का स्थान दुनिया में तिलहन के फसल में पहले स्थान पर है और यह दुनिया के कुल तेल और वसा उत्पादन में लगभग 25% का योगदान देता है। सोयाबीन के क्षेत्रफल और उत्पादन के मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम स्थान पर है, जबकि भारत क्षेत्रफल में चौथा और उत्पादन में दुनिया में पाँचवें स्थान पर है। संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेंटीना, ब्राजील, चीन और भारत सोयाबीन के प्रमुख उत्पादक देश हैं, जो विश्व उत्पादन का 90 प्रतिशत उत्पादन करते हैं। अजैविक और जैविक दबावों के कारण भारत में सोयाबीन की उत्पादकता (830 किग्रा/हेक्टेयर) वैश्विक स्तर पर (2,800 किग्रा/हेक्टेयर) जो औसत से कम है। 'गरीबो का माँस' (poor man's meat) शब्द सोयाबीन को उनकी उच्च प्रोटीन सामग्री के कारण संदर्भित करता है। सोयाबीन एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत है। इसके मुख्य घटक प्रोटीन, कार्बोहाइडेंट और वसा होते है। सोयाबीन में 42% प्रोटीन, 22% तेल, 21% कार्बोहाइडेंट, 12% नमी तथा 5% होती है। देश में सोयाबीन उत्पादन में मध्यप्रदेश अग्रणी है, परंतु हाल ही के कुछ वर्षों में देश में सोयाबीन उत्पादन में भारी गिरावट आयी है, जिसके प्रमुख कारणो मे मौसम की विपरीत परिस्थितियां है, जैसे फसल अवधि में अधिक वर्षा होना या बहुत कम वर्षा होना, ये परिस्थितियाँ रोग को बहुत हद तक बढ़ाती है, प्रस्तुत लेख में सोयाबीन की फसल को प्रभावित करने वाले प्रमुख कवक, रोगों के बारे में जानकारी उनके कारणों एवं प्रबंधन के उपायों के बारे में बताया गया है, जो निम्नलिखित है।

एनथ्रेकनोज

लक्षणः सोयाबीन का एनथ्रेकनोज रोग *कोलेटोट्रिचम ट्रंकैटम (Colletotrichum truncatum)* कवक के कारण होता है। यह एक बीज एवं मृदाजनित रोग है। इस रोग की

शुरूआती अवस्था में पत्तियों तने और फली पर गहरे भूरे रंग के अनियमित धब्बे बन जाते है और बाद में यह धब्बे काली संरचनाओं से भर जाते है। पत्तियों एवं शिराओ का पीला-भूरा होना, मुड़ना और झड़ना इस बीमारी के लक्षण है। संक्रमित बीज मुरझाए, फफूँदीदार और भूरे रंग के हो जाते हैं। बीजपत्रों पर लक्षण गहरे भूरे रंग के धँसा कैंकर के रूप में दिखाई देते हैं।

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ या प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- फसल के तुरंत बाद खेत की साफ जुताई करके पौधे के अवशेषों को पूरी तरह से हटा दें।
- पिछले वर्षों के संक्रमित ठूंठ को नष्ट कर दें।
- अच्छी जल निकासी वाले खेत का रख-रखाव करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर थिरम या कैप्टन या कार्बेन्डाजिम से बीज उपचार 3 ग्राम/किलोग्राम और मैनकोजेब 2.5 ग्राम/लीटर स्प्रे या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम/लीटर का प्रयोग करें।

अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट

लक्षण : *अल्टरनेरिया टेनुइसिमा (Alternaria tenuissima)* कवक सोयाबीन के अल्टरनेरिया लीफ स्पॉट का कारक है। यह रोग पौधों की पत्तियों और फली को प्रभावित करता है। बीज छोटे होकर सिकुड़ जाते हैं। बीज पर काले, अनियमित, फैले हुए धँसा क्षेत्र होते हैं। पर्णसमूह पर संकेंद्रित वलय के साथ भूरे, परिगलित धब्बों का दिखना, जो आपस में जुड़कर बड़े परिगलित क्षेत्रों का निर्माण करते हैं। रोगग्रस्त पत्तियाँ बाद में मौसम में सूख जाती हैं और समय से पहले गिर जाती हैं।

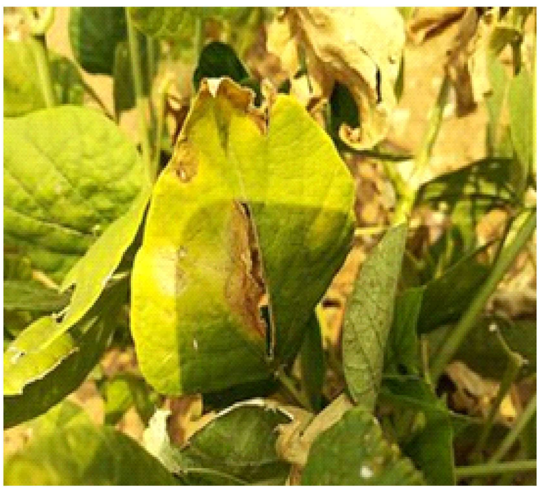

रोग प्रबंधन

- खेतों से फसल अवशेषों को नष्ट करें।
- थिरम + कार्बेन्डाजियम (2:1) @ 3 ग्राम/किलोग्राम बीज से बीज उपचार करें।
- मैंकोज़ेब या कॉपर फफूँदनाशक 2.5 ग्राम/लीटर या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम/लीटर का प्रयोग करें।

टारगेट लीफ स्पॉट

लक्षणः *कॉर्नीस्पोरा कैसीकोला* (*Corynespora cassiicola*) कवक जो संक्रमित करने के लिए जाना जाता है। यह बीमारी मुख्य रूप से पत्तियों पर बाद में फलियो, तनो पर दिखाई देती है। पत्तियों पर गोल से असमान लाल-भूरे रंग के अनियमित आकार के गोल धब्बे और घावों में आमतौर पर उनके चारों ओर एक पीले-हरे रंग के धब्बे होते है। शब्द 'टारगेट स्पॉट' पत्तियों पर बड़े पैच को संदर्भित करता है। गहरे भूरे रंग के धब्बे से लेकर लंबे घाव तक तनों और पेटीओल्स पर संक्रमण दिखाई देते हैं। बाद में फलियों पर छोटे गोल बैंगनी या काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। अधिक संक्रमण होने पर पतियाँ समय से पहले ही झड़ जाती हैं।

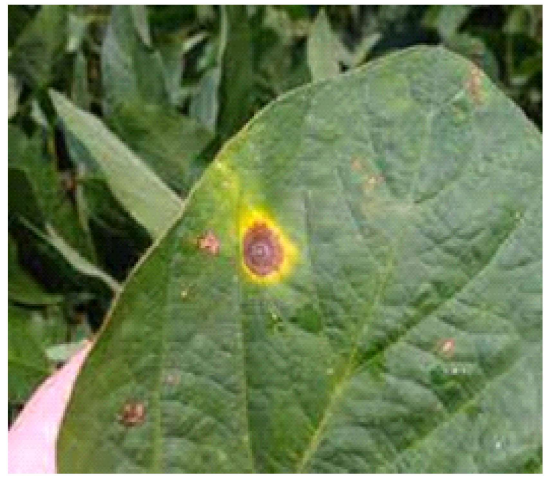

रोग प्रबंधन

- स्वस्थ /प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- टारगेट लीफ स्पॉट टीएलएस को एज़ोक्सिस्ट्रोबिन, पाइराक्लोस्ट्रोबिन, फ्लुक्सापायरोक्सैड और प्रोथियोकोनाज़ोल (एक डीएमआई या ट्राईज़ोल कवकनाशी और स्ट्रैटेगो वाईएलडी में घटकों में से एक) सावधानीपूर्वक प्रयोग करें।

फ्रॉगआई लीफ स्पॉट

लक्षणः पत्तियों पर फ्रॉगआई लीफ़ स्पॉट (मेंढक की आँख जैसे धब्बे) *सरकोस्पोरा सोजिना* (*Cercospora sojina*) कवक के कारण होते हैं। रोग मुख्य रूप से पर्णसमूह को प्रभावित करता है, लेकिन इससे तने, फली और बीज भी संक्रमित हो सकते हैं। पत्ती के घाव गोलाकार या कोणीय होते हैं, पहले भूरे रंग के बाद हल्के भूरे से राख भूरे रंग के साथ गहरे रंग के होते जाते हैं। पत्ती के धब्बे आपस में जुड़ कर बड़े धब्बे बन जाते हैं। जब घाव बहुत होते हैं, तो पत्तियाँ मुरझा जाती हैं और समय से पहले गिर जाती हैं। फलियों पर घाव गोलाकार से लम्बे, हल्के धँसा और लाल भूरे रंग के होते हैं। बीजों पर हल्के से गहरे भूरे या भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो छोटे धब्बों से लेकर बड़े धब्बों तक होते हैं।

रोग प्रबंधन

- फसल चक्र का प्रयोग करें।
- स्वस्थ या प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- फसल के तुरंत बाद खेत की साफ जुताई करके पौधे के अवशेषों को पूरी तरह से हटा दें।
- थिरम + कार्बेन्डाजिम (2:1) @ 3 ग्राम/किलोग्राम बीज से बीज उपचार करें।
- मैनकोजेब 2.5 ग्राम/लीटर या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करें।

चारकोल रोट

लक्षणः यह रोग *मैक्रोफोमिना फेजोलिना* (*Macrophomina phaseolina*) नामक कवक से होता है। पौधों में नमी के दबाव या नेमाटोड के हमले के तहत या मिट्टी के संघनन के माध्यम से या पोषक तत्वों की कमी के कारण लक्षण दिखाई देते हैं। यह सोयाबीन के पौधे का तना और जड़ रोग है। निचली पत्तियाँ क्लोरोटिक हो जाती हैं और मुरझा कर सूख जाती हैं। रोगग्रस्त ऊतक आमतौर पर भूरे रंग के मलिनकिरण का विकास करते हैं। स्क्लेरोटिया काले चूर्ण जैसा दिखता है इसलिए इस रोग को 'चारकोल रोट' के रूप में जाना जाता है। जड़ों का काला पड़ना और टूटना सबसे आम लक्षण है। कवक शुष्क परिस्थितियों में मिट्टी और फसल के मलबे में जीवित रहता है।

रोग प्रबंधन

- गर्मी में गहरी जुताई करें।
- फसलो में संतुलित खाद का प्रयोग करें।
- सोयाबीन को अनाज के साथ फसल चक्र का प्रयोग करें।
- अच्छी जल निकासी वाले खेत को बनाए रखें और पिछले वर्षों के संक्रमित ठूंठ को नष्ट कर दें।
- रोग सहनशील किस्मे जैसे जे.एस.-2034 जे.एस.-2029 का उपयोग करें।
- *ट्राइकोडर्मा विरडी* @ 4 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीज उपचारित करें।
- खड़ी फसल में कार्बेनडाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

राइज़ोक्टोनिया एरियल ब्लाइट / वेब ब्लाइट

लक्षणः *राइज़ोक्टोनिया सोलानी* (*Rhizoctonia solani*) कवक संक्रमण का स्रोत है, जिसे पर्ण झुलसा और वेब ब्लाइट के रूप में भी जाना जाता है। सर्वप्रथम पत्तियों पर लक्षण गीले, भूरे हरे धब्बों के रूप में शुरू होते हैं, जो बाद में भूरे से भूरे रंग के हो जाते हैं। पहली नज़र में, संक्रमित पत्तियाँ गीली लगती हैं। संक्रमित बीज में अनियमित रूप से बने घाव दिखाई देते हैं, जो भूरे या हल्के भूरे रंग के होते हैं। वे जल्दी से लाल से हरा-भूरा रंग विकसित कर लेते हैं। बाद में, संक्रमित क्षेत्र में भूरा या काला रंग विकसित हो जाता है। बहुत अधिक बारिश या नमी होने पर पत्तियों पर कवक की एक वेब जैसी मायसेलियल वृद्धि

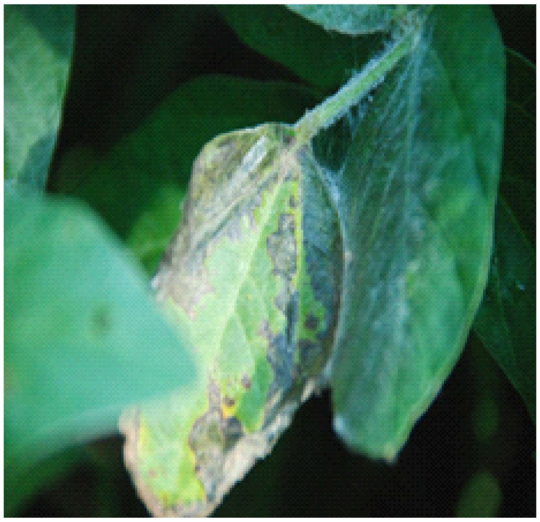

चित्र :

दिखाई देती है। पत्तियों और पेटीओल्स पर, गहरे भूरे रंग के स्क्लेरोटिया बनते हैं। रोगज़नक़ मिट्टी में स्क्लेरोटिया के रूप में बना रहता है।

रोग प्रबंधन

- घने रोपण से बचें।
- जल्द ही खेत की साफ जुताई करके पौधे के अवशेषों को पूरी तरह से ढक दें फसल के बाद।
- संक्रमित ठूंठ को नष्ट करें।
- थिरम + कार्बेन्डाजियम (2:1) @ 3 ग्राम/किलोग्राम बीज से बीज उपचार करें।
- मैंकोज़ेब या कॉपर फफूंदनाशक 2.5 ग्राम/लीटर या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम/लीटर का प्रयोग करें।

निष्कर्ष

देश भर में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल सोयाबीन है। इनमें कई प्रकार के कवक का संक्रमण होता हैं, जिसके कारण इनका उत्पादन घट रहा है। हमें यह बात हमेशा ध्यान रखनी है कि रासायनिक नियंत्रण की शुरुआत तभी करनी है जब रोग आर्थिक देहली स्तर को पार कर ले, साथ ही हमें समेकित रोग प्रबंधन पर ध्यान देना है, जिसकी शरूआत बुवाई से पहले हो जाती है जैसे ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करना, रोग प्रतिरोधक किस्मों का चयन करना, अनुमोदित बीज दर से ज्यादा नही रखना और नत्रजन उर्वरकों का उपयोग नहीं करना और पोटाश की कमी रहने पर पोटाश खादों का उपयोग मिट्टी में सुनिश्चित करना, इसलिए जब हम सोयाबीन की फसल का उचित प्रबंधन करेंगे तो उपज में वृद्धि होगी और फसल का पोषण मूल्य उच्च बना रहेगा।

संदर्भ

- Anonymous, (2022), Online Agriculture Statics. Http/www.faostal.org.
- Babu, Bandamaravuri Kishore; Saxena, Anil K.; Srivastava, Alok K.; Arora, Dilip K. (2007-11-01). "Identification and detection of Macrophomina phaseolina by using species-specific oligonucleotide primers and probe". *Mycologia*. **99** (6): 797–803.
- Bennett, J. Michael; Rhetoric, Emeritus; Hicks, Dale R.; Naeve, Seth L.; Bennett, Nancy Bush (2014). *The Minnesota Soybean Field Book*. St Paul, MN: University of Minnesota Extension. p. 83. Archived from the original on 30 September 2013. Retrieved 21 February 2016.
- Frogeye Leaf Spot." (n.d.): n. pag. *University of Tennessee*. Institute of Agriculture. Web. 25 Oct. 2016.
- https://agritech.tnau.ac.in/crop_protection/soyabean_disease/soybean_d5.html.
- Xavier, S.A., Canteri, M.G., Barros, D.C.M. and Godoy, C.V. 2013.Sensitivity of *Corynespora cassiicola* from soybean to carbendazim and prothioconazole. *Tropical Plant Pathology,* 38(5): 431-435.

✡✡

ISSN No. 2583-3316

पॉलीहाउस में शिमला मिर्च उत्पादन

खलील खान[1*] एवं मनोज मिश्र[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, दलीपनगर जनपद कानपुर (देहात)
च. शे. आ. कृषि एवं प्रौ0 वि0 वि0 कानपुर
पत्राचारकर्ता : khankhalil64@gmail.com

परिचय

शिमला मिर्च एक महत्वपूर्ण व्यापारिक सब्जी फसल है। यद्यपि इसे मीठी काली मिर्च, घण्टी काली मिर्च अथवा शिमला मिर्च के नाम से जानते है। शिमला मिर्च के पौधे पूरे विश्व में उगाये जाते हैं। शिमला मिर्च की फसल ठण्डे ऋतु की फसल है। लेकिन इसकी खेती पॉलीहाउस में पूरे वर्ष की जाती है। शिमला मिर्च को सब्जी या सलाद के रूप में प्रयोग करते हैं। इसकी सब्जी मानव स्वास्थ्य के लिये अत्यधिक लाभकारी है। शिमला मिर्च को विगत कई वर्शों से अस्थमा और कैंसर जैसी गम्भीर बीमारियों को ठीक करने के लिये प्रयोग किया जाता रहा है। शिमला मिर्च चाहे जिस रंग की हो उसमें प्रचुर मात्रा में विटामिन ए, विटामिन सी एवं बीटा कैरोटीन के साथ ही खनिज कैल्शियम (13.4 मिग्रा.) मैग्नीशियम (14.9 मिग्रा.) फॉस्फोरस (28.3 मिग्रा.) एवं पोटाश (263.7 मिग्रा.) प्रति 100 ग्रा. ताजी शिमला मिर्च के फलों के वजन में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके अन्दर बिल्कुल भी कैलोरी नहीं होती है। इसलिये यह खराब कोलेस्ट्राल को नहीं बढ़ाती है, साथ ही यह शरीर के वजन को नियंत्रित करने में भी सहायक है होती।

शिमला मिर्च पॉलीहाउस/ग्रीन हाउस में सर्वाधिक उगाई जाने वाली सब्जी है जबकि टमाटर व खीरा क्रमशः दूसरे तथा तीसरे स्थान पर आते हैं। पॉलीहाउस के अन्दर उगाई जाने वाली शिमला मिर्च बाहर खेतों में उगाई जाने वाली शिमला मिर्च से कई बातों में भिन्न होती है जैसे फसल की उम्र, तुड़ाई का समय इत्यादि। लेकिन पॉलीहाउस के अन्दर सब्जी उगाने का खर्च भी ज्यादा आता है इसलिये किसान को अधिक तथा अच्छी गुणवत्ता के फल एवं ज्यादा उत्पादन मिलता है तथा बेमौसमी होने के कारण ज्यादा मुनाफा कमाया जा सकता है। शिमला मिर्च उगाने के साथ–साथ लागत भी कम करनी चाहिये। शिमला मिर्च की पैदावार पॉलीहाउस के स्थान, उर्वरता, मौसम, पौधों की दूरी, पौधों को सहारा देने की विधि, किस्म, सिंचाई तथा उर्वरकों की मात्रा पर निर्भर करती है। शिमला मिर्च उगाने के लिये क्षेत्र तथा परिस्थितियों के अनुसार पॉलीहाउस का डिजाइन (आकार) तैयार किया जाना चाहिये तभी सब्जी उत्पादन लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

शिमला मिर्च की खेती हेतु मृदा का चयन

शिमला मिर्च की खेती हेतु मृदा चयन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसकी खेती के लिये मृदा चयन कई बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये करना चाहिये। जिस मृदा में शिमला मिर्च की खेती करना है। उस मृदा का पी.एच. मान 6 से 6.5 के मध्य होना चाहिये।

मृदा का नमूना लेकर मृदा परीक्षण प्रयोगशाला से मृदा परीक्षण अवश्य करवा लेना चाहिये, जिससे भविष्य में उस मृदा की अम्लीयता एवं क्षारीयता ज्ञात हो सके। इसके साथ ही मृदा उर्वरा शक्ति ज्ञात हो जाती है, जिससे अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग न हो और संतुलित उर्वरक प्रबन्धन किया जा सके, जिससे फसल लागत कम हो जाती है।

किस्में

किस्में हमेशा वही चुनी जानी चाहिये, जो ज्यादा बिकती हो। इस समय लाल तथा पीली (सबसे ज्यादा पसन्द की जाने वाली) के अतिरिक्त बैगनी, संतरी, भूरी रंग की शिमला मिर्च की किस्में भी उपलब्ध है। पॉलीहाउस के अन्दर हमेशा संकर (हाईब्रिड) किस्में ही उपयोग करनी चाहिये। सामान्यतः

एक वर्ग मीटर में 22 से 35 किग्रा. शिमला मिर्च का उत्पादन हो जाता है। अच्छे रंग के अलावा किस्म में रोगों तथा फल विकारों के प्रति प्रतिरोधकता होनी अत्यावश्यक है। आजकल बाजार में बॉम्बी, यू.एस. 181 इत्यादि (लाल) तथा ओरोबेल (पीली) किस्में उपलब्ध है तथा हर साल नयी किस्में बाजार में आती रहती है।

नर्सरी उत्पादन, पौधारोपण व पौधों में अन्तराल

पौधरोपण के लिये पौधों को नर्सरी ट्रे में ही उगायें, जिसमें कई भाग होते है, नर्सरी उगाने के लिये कोकोपीट माध्यम उपयुक्त है। क्योंकि यह आसानी से उपलब्ध हो जाता है। अच्छी पौध लेने के लिये हर भाग में दो–तीन बीज डाले। पौध निकलने पर हर भाग से केवल एक सबसे सेहतमंद पौध लें। पौधे निकलने के लिये उपयुक्त तापमान 24–25^0 से. होना चाहिये। उपयुक्त तापमान में पौधा 5–7 दिनों में निकल आता है। एक ग्राम बीज में 80–100 पौधे प्राप्त किये जा सकते है। पौधों को 6 पत्तों की अवस्था में रोपित करें। पौधों में अंतराल सामान्यतः 50 × 50 सेमी., 2 तने वाले पौधों में 45 × 45 सेमी. की दूरी पर लगाये। इसकी क्यारियाँ 15 सेमी. ऊँची तथा 1 मी. तक चौड़ी हो सकती है। क्यारियों में खरपतवार नियंत्रण एवं पानी के संरक्षण के लिये 40 माइक्रॉन की काली प्लास्टिक मल्च का प्रयोग करना चाहिये।

शिमला मिर्च के पौधों की रोपाई

नर्सरी से शिमला मिर्च के पौधों को आसानी से उखाड़े, जिससे पौधें की जड़े टूटने न पाये। साथ ही एक बेड पर दो पोधों की कतारों की रोपाई करें। पौधों से पौधों की दूरी 50 सेमी. तथा कतार से कतार की दूरी 45 सेमी. रखनी चाहिये। फसल रोपाई के बाद पौधों की सुरक्षा हेतु 80–90 प्रतिशत नमी 2–3 सप्ताह तक बनाये रखें। अन्यथा नमी की कमी से पौधों के सूखने का भय बना रहता है।

पौधारोपण का समय

पॉलीहाउस में शिमला मिर्च उगाने का मौसम फरवरी–मार्च से लेकर नवम्बर दिसम्बर तक होता है। लम्बे समय तक चलने वाली फसल के लिये मार्च महीने में पौध रोपण करें। इससे पहली पैदावार मध्य जून तक मिल जायेगी। इस समय शिमला मिर्च का भाव बाजार में अच्छा मिलता है। यह पैदावार मध्य अगस्त तक ठीक रहती है। मध्य अगस्त से सितम्बर मध्य तक पैदावार में गिरावट आती है। अक्टूबर से नवम्बर तक फिर से पैदवार में बढ़ोत्तरी होती है। छोटे समय के लिये उगाई जाने वाली शिमला मिर्च के लिये फरवरी में पौधरोपण करें। इससे जुलाई तक अच्छी पैदवार मिलती है। उसके बाद मिट्टी का उपचार करके दोबारा जुलाई में पौधरोपण करें। जुलाई तथा अगस्त में ज्यादा तापमान तथा आर्द्रता की वजह से रोगों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। ज्यादा तापमान में फूल झड़ने की समस्या आम हो जाती है। इसे रोकने के लिये तापमान नियंत्रण की वजह से परागण भी नहीं हो पाता है तथा पैदावार पर असर पड़ता है।

मिट्टी रहित माध्यम

मिट्टी रहित माध्यम के उपयोग से मिट्टी के उपचार पर आने वाले खर्च से बचा जा सकता है। ऐसे माध्यम कीट एवं बीमारियों रहित होते है। मिट्टी रहित माध्यम से शिमला मिर्च उगाने के लिये खास तरह के बक्से बनाये जाते है। जिनको कोको पीट, परलाइट या दूसरे माध्यम से भरा जाता है। अगर इनमें से कोई रोग या कीट का प्रकोप नहीं होता है तो इन्हें 2–3 बार प्रयोग किया जा सकता है। यह बक्से 3 फीट लम्बे होते है। जिनमें 3–4 पौधे लगाये जा सकते है। ताकि ज्यादा से ज्यादा पौधों को पॉलीहाउस में रखा जा सके। इसके अतिरिक्त कृत्रिम माध्यम से भरे हुये बैग भी बाजार में उपलब्ध है। भारत में यह तकनीक अभी ज्यादा प्रचलित नहीं हुयी है तथा इस पर खर्चा भी ज्यादा आता है।

सिंचाई एवं फर्टिगेशन

पॉलीहाउस में उगाई जाने वाली शिमला मिर्च में विकास अवस्था के अनुसार टपक सिंचाई द्वारा पानी की निर्धारित मात्रा का प्रयोग करना चाहिये। ड्रिपर की प्रवाह दर 2 लीटर प्रति घण्टा होनी चाहिये तथा उनके बीच की दूरी 50 सेमी. रखी

जानी चाहिये। टपक सिंचाई प्रणाली में प्रवाह दर की एकरूपता का ध्यान रखना आवश्यक है। अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये टपक सिंचाई के साथ पॉलीथीन मल्च (25–50 माईक्रॉन) का प्रयोग करें।

पॉलीहाउस में शिमला मिर्च के लिये विकास अवस्था के अनुसार सिंचाई की मात्रा का विवरण

महीना	विकास अवस्था	प्रत्यारोपण के पश्चात् (दिन)	पानी की आवश्यकता (लीटर/दिन)	पानी की आवश्यकता (लीटर/सिंचाई/2,000 वर्ग मी.)	टपक सिंचाई प्रणाली चलाने का समय/सिंचाई (मिनट)	सिंचाई अंतराल	2,000 वर्ग मी.) में सिंचाई के लिए पानी की मात्रा (लीटर)
फरवरी–मार्च	वानस्पतिक वृद्धि	2-25	0.56	1750	20.0	हर तीसरे दिन	21,000
मार्च	फूलों का आना	26-40	0.88	2780	28.0	हर तीसरे दिन	19,460
मार्च–अप्रैल	फलो का बनना	41-55	1.00	3140	32.0	प्रति दिन	47100
अप्रैल–मई	फल वृद्धि व विकास	56-80	1.4	4340	44.0	प्रति दिन	1,08,500
मई–जून	तुड़ान	81-130	1.6	5780	58.0	प्रति दिन	2,89,000
जुलाई–अगस्त	तुड़ान	131-180	1.2	3240	34.0	प्रति दिन	1,62,000
अगस्त–सितम्बर	अंतिम तुड़ान	181-230	0.98	3040	30.0	प्रति दिन	1,52,000
योग							799060

टपक सिंचाई प्रणाली द्वारा घुलनशील उर्वरकों को पौधों के जड़ क्षेत्र तक पहुँचाना फर्टिगेशन कहलाता है। फर्टिगेशन के लिये मध्यम उर्वरता वाली मृदा में घुलनशील उर्वरकों का प्रयोग (पानी की मात्रा) निम्नानुसार करना चाहिये।

फर्टिगेशन की मात्रा

वानस्पतिक वृद्धि अवस्था से लेकर अन्तिम तुड़ान तक वेन्चुरी का प्रयोग करके हर तीसरे दिन निम्नलिखित सारणी के अनुसार फर्टिगेशन करें। सारणी में लिखे गये सभी उर्वरक एक ही टैंक में घोले जा सकते है। फर्टिगेशन के बाद टपक सिंचाई की लेट्रल्स को फ्लश करना तथा फिल्टर की सफाई करना आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण एवं नमी के संरक्षण के लिये 25–50 माईक्रान की पालीथीन मल्च का अवश्य प्रयोग करें। मृदा में जैविक पदार्थों की उपयुक्त मात्रा मिलायें (एफ.वाई.एम. 4 किलो प्रति वर्ग मीटर की दर से या वर्मीकम्पोस्ट 2 किलो प्रति वर्ग मीटर की दर से) मिलाये, ताकि उर्वरता बनी रहे।

विकास अवस्था	प्रत्यारोपण के पश्चात (दिन)	फर्टिगेशन की सं.	2000 वर्ग मी. के लिये उर्वरकों की मात्रा (कि.ग्रा.)			उर्वरकों की मात्रा/ फर्टिगेशन (कि.ग्रा.)		
			एन.पी.के. 19:19:19	यूरिया	म्यूरेट ऑफ पोटाश	एन.पी.के. 19:19:19	यूरिया	म्यूरेट ऑफ पोटाश
वानस्पतिक वृद्धि	2-25	10	4	10	4	0.40	1.0	0.86
फूलों का आना	26-40	7	6	10	6	0.86	1.42	0.86
फलों का बनना	41-55	7	20	30	20	2.86	4.28	2.86
फल बृद्धि व विकास	56-80	13	40	80	60	3.08	6.16	4.62
प्रथम तुड़ाई	81-130	26	80	130	100	3.08	5.0	3.84
द्वितीय तुड़ाई	131-180	26	90	120	90	3.46	4.62	3.46
अंतिम तुड़ाई	181-230	26	80	100	80	3.08	3.84	3.08
	योग	**115**	**320**	**480**	**360**			

पौधों को सहारा देना तथा काँट-छाँट

शिमला मिर्च में 8–12 पत्तों के बाद एक मुख्य फूल बनता है, जहाँ पौधा दो या अधिक टहनियों में विभाजित हो जाता है। हर एक टहनी में 1 या दो पत्तों के बाद फूल बनता है, जहाँ से वह फिर दो भागों में बट जाता है। इसी तरह पौधे की बढ़ोत्तरी होती है। चूँकि पॉलीहाउस में शिमला मिर्च का पौधा 6–7 फीट तक चला जाता है। इसलिये इसे 2 तरीकों वी विधि या स्पैनिश विधि से बढ़ाया जाता है।

वी विधि में पौधे को दो या चार शाखाओं पर चलाया जाता है। इसमें आमने सामने केवल एक–एक या दो शाखायें रखी जाती है तथा बाकी शाखाओं को निकाल दिया जाता है। इस प्रकार पौधा अंग्रेजी के वी शब्द का आकार ले लेता है तथा इसे वी विधि से पौधा चलाना कहते है। इस विधि में काँट–छाँट हर हफ्ते की जाती है।

गर्मियों में फल को बचाने के स्पैनिश तरीके में पौधे की काँट–छाँट नहीं की जाती है तथा पौधे को प्राकृतिक रूप से बढ़ने दिया जाता है। इस प्रकार की इस तरीके में काँट–छाँट का खर्चा बच जाता है। पौधों को सहारा देने के लिये नाइलोन की रस्सी एवं हुक का इस्तेमाल किया जाता है।

फूल खिलना तथा परागण

शिमला मिर्च के पौधे में 3–4 हफ्तों में फूल आना शुरू हो जाते है जब उसमें 7–15 पत्ते होते है। पहला फूल हमेशा निकाल देना चाहिये। फूल खिलने के समय दिन का तापमान 25°C और रात का तापमान 22°C से. (दिन व रात) होना चाहिये अन्यथा वह फल के आकार को प्रभावित करता है। जब फूल कम तापमान में बढ़ता है तो फल का आकार छोटा तथा चपटा होता है। ऐसे फल 2 या 3 लोच वाले होते है तथा नीचे से नुकीले होते है।

शिमला मिर्च स्व–परागित फसल है किन्तु मधु मक्खियों द्वारा परागित फसल में फल सही आकार, ज्यादा पैदावार तथा फल जल्दी आते है। इसके लिये फूल खिलने के समय पॉलीहाउस के अन्दर मधुमक्खियों के बक्से रखें।

फल बनना तथा फल भार

जब तापमान व रोशनी सही मात्रा में उपलब्ध होती है, तो फल बनना शुरू हो जाता है। गर्मियों में रात का तापमान 18–20^0 सेल्सियस तथा दिन का तापमान 22–25^0 सेल्सियस हो, तो फल अच्छा बनता है। 18^0 सेल्सियस से नीचे का तापमान फल बनने के लिये उपयुक्त नहीं होता है। छोटे पौधों में फल बनना आसान होता है। लेकिन जैसे–जैसे पौधे बड़े होते है। फल बनने में समय ज्यादा लगता है। फल को जल्दी पकाने के लिये जब फल हरा हो तो पॉलिहाउस का तापमान 24°C सेल्सियस रखें। हर पौधे की फल वहन करने की एक क्षमता होती है। एक पौधे पर जरूरत से अधिक फल पौधे को नुकसान पहुँचा सकते है। एक छोटा पौधा एक समय में 4–8 फल ही वहन कर सकता है। जबकि बड़ा पौधा 8–12 फल वहन कर सकता है। छोटे पौधे में किसान खुद नियंत्रण रखे तथा अवांछित फलों को निकाल दें।

फल का बढ़ना

फूल खिलने से लेकर फूल बनने तक 7–12 हफ्ते लग सकता है। फल बनने में 4–5 हफ्ते का अन्तर कई कारणों से हो सकता है। जैसे मौसम, तापमान, फल भार, पौधों की देखरेख, किस्म इत्यादि। फल 24°-25° सेल्सियस तापमान पर अधिक बढ़ते हैं। यदि तापमान में 1° सेल्सियस की वृद्धि होती है, तो फल की वृद्धि में 2–3 दिन की कमी हो जाती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि तापमान 30 सेल्शियस से अधिक या 18 सेल्सियस से कम न हो।

फलों का तुड़ान एवं भण्डारण

शिमला मिर्च के फल शुरू–शुरू में एक साथ पकते है इसलिये बार–बार तुड़ान की जरूरत पड़ती है। (हफ्ते में एक बार) रंगीन शिमला मिर्च के फल को लगभग 70 प्रतिशत रंग आने पर तथा सख्त हो तभी तोड़ा जाता है। पौधे से तोड़ा गया हर फल रंग नहीं बदलता है किन्तु हरा फल अगर थोड़ा देर से तोड़ा गया हो तो वह रंग बदल लेता है। फल को छोटी तेज चाकू या सिकेटियर से बिलकुल तने के पास से काटे। ऐसे फल बैक्टिरियल सॉफ्ट रॉट के प्रति ज्यादा प्रतिरोधक होते है।

फलों को तोड़ने का सही समय सुबह गर्मी होने से पहले होता है। फिर फलों को पानी छिड़कर साफ कर तथा अच्छी तरह सुखा कर कार्टन में पैक किया जाता है। शिमला मिर्च को 2–3 हफ्तों तक रखा जा सकता है। इसके लिये भण्डारण का तापमान 7.2^0 सेल्सियस तथा 90–95 प्रतिशत आर्द्रता होनी चाहिये। 7.2^0 सेल्सियस से नीचे फल कम तापमान के कारण क्षतिग्रस्त हो सकते है तथा 12.7^0 सेल्सियस से ज्यादा तापमान फल को जल्दी पका देता है। अगर आर्द्रता 90–95 प्रतिशत से कम हो तो फल एकदम सिकुड़ जाते है तथा इनका भार भी कम हो जाता है।

फल तुड़ान का पौधे पर प्रभाव

फलों के तुड़ान से पोधे में नई शाखायें नये फूल एवं फल बनने में मदद मिलती है। पहले फलों को हरा तोड़ने से पौधे की बढ़ोत्तरी अच्छी होती है तथा नये फल जल्दी लगते है। वहीं अगर एक पौधे से सारे फल एक साथ तोड़ लिये जाते है तो पौधे की बढ़ोत्तरी बहुत ज्यादा होती है तथा अगले फलों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती। इसलिये फलों को धीरे–धीरे तथा बार–बार तोड़ा जाता है ताकि नये फल भी आते रहें, जिससे लगातार उत्पादन मिलता रहे।

फल विकार

पॉलीहाउस में सारी सावधानियों के बावजूद फलों में कुछ विकार उत्पन्न हो सकते है। इनमें से कुछ मुख्य विकास तथा उनके नियंत्रण के लिये आवश्यक सावधानियाँ निम्नलिखित है।

(क) फलों का फटनाः पॉलीहाउस में तापमान में अत्यधिक कमी वृद्धि तथा आवश्यकता से अधिक पानी देने से यह विकार पैदा हो सकता है। ऐसे फल जिनका छिलका 8 मि.मी. से मोटा हो वह फटने के संशयी होते है।

इसके प्रबन्धन के लिये पॉलीहाउस में तापमान नियंत्रण, आवश्यकतानुसार सिंचाई तथा उर्वरकों की उचित मात्रा का प्रयोग करना चाहिये।

(ख) चपटे फल : रात के समय 18 सेल्सियस से नीचे तापमान परागण में बाधा डालता है जिससे फल में बीज अच्छी तरह नहीं बन पाते तथा फल चपटा हो जाता है।

इसे रोकने के लिये बम्बल बी (Bumble bee) का परागण में प्रयोग करें।

(ग) ब्लास्ट एण्ड रॉट : यह विकार कैल्शियम की कमी के कारण होता है। इसमें फल के नीचे का भाग भूरे रंग में बदल जाता है, जिससे फल बेचने योग्य नहीं रहता। नियंत्रण के लिये कैल्शियम का छिड़काव करें।

(घ) सन स्काल्ड : पॉलीहाउस में अगर पॉलीथीन शीट उपयुक्त न हो तो सूर्य की किरणें फलों के कुछ भाग पर सीधी पड़ती है। जिससे वह भाग खराब हो जाता है। फल की गुणवत्ता खराब होने के कारण बेचने योग्य नहीं रहता।

इस विकार के प्रबन्धन के लिये उपयुक्त गुणवत्ता की पॉलिथीन शीट का प्रयोग करें। छायादार जालियों का प्रयोग भी किया जा सकता है। सदैव टपक सिंचाई का ही प्रयोग करें तथा पौधों पर पानी का छिड़काव न करें। पौधों में अधिक पत्तों की संख्या भी इसके नियंत्रण में लाभदायक होती है।

सरकारी प्रोत्साहन

प्लास्टिक कल्चर से सम्बन्धित विभिन्न तकनीकों जैसे पॉलीहाउस, सूक्ष्म सिंचाई, प्लास्टिक मल्च शीट तथा ओला अवरोधक जाली आदि को अपनाने पर भारत सरकार की ओर से बागवानों को प्रदेश के बागवानी विभाग के माध्यम से विभिन्न योजनाओं के तहत 50 प्रतिशत तक की छूट प्रदान की जाती है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग में चल रही किसान बागवान समृद्धि योजना के अन्तर्गत किसानों को पालीहाउस बनाने और टपक सिंचाई यंत्र लगाने पर छूट का प्रावधान किया गया है।

शिमला मिर्च खेती हेतु आर्थिक विश्लेषण

क्र.सं.	विशेष (Particular)	विस्तृत (Details)	रूपये (Amount)
1.	पॉलीहाउस का क्षेत्रफल	2,000 वर्ग मी.	–––
2.	पालीहाउस निर्माण	आयातित प्लास्टिक और जी. आई. पाइप राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के मानदण्ड के अनुरूप/750/प्रति वर्ग मी.	15,00,000
3.	सिंचाई प्रणाली	टपक सिंचाई प्रणाली द्वारा पौधा फर्टिगेशन एवं पानी छानने की इकाई	1,88,000
4.	बेड तैयारी (क्यारी)	बेड तैयारी हेतु लाल मिट्टी धान की भूसी, सड़ी हुई गोबर खाद एवं बालू इत्यादि।	1,80,000
5.	पौधे	पौध घनत्व 4 पौधे प्रति वर्ग मी0: कुल पौधे 8000 मूल्य प्रति पौधा 12/–	96,000
	कुल निवेश (रू.)		19,64,000

प्रति वर्ष खेती की लागत			
क्र.सं.	विशेष (Particular)	विस्तृत (Details)	रूपये (Amount)
1.	विद्युत	3 इकाई प्रति दिन	50,000
2.	पानी की आवश्यकता	प्रतिवर्ष (अनुमानित)	50,000
3.	उर्वरक	पानी में घुलनशील उर्वरक	60,000
4.	श्रमिक	4 श्रमिक प्रतिदिन	2,50,000
5.	फसल सुरक्षा	छिड़काव	60,000
6.	परिवहन सामग्री पैकिंग, बिक्री कमीशन	पैकिंग सामग्री परिवहन	1,62,000
7.	अन्य	रखरखाव एवं मूल्य द्वारा	2,26,800
	उप–योग **वापसी प्रतिवर्ष**		858,800
1.	उपज/पौधा/वर्ष	4 किग्रा.	32,000
2.	मूल्य प्रति किग्रा0	औसत मूल्य 45रू./किग्रा.	14,40,000
3.	कुल लाभ (Total Return)	प्रतिवर्ष	14,40,000
4.	उत्पादन की लागत	प्रतिवर्ष	8,58,800
5.	शुद्ध लाभ (Net Return)	प्रतिवर्ष	5,81,200

निष्कर्ष :

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि शिमला मिर्च अत्यधिक पंसद की जाने वाली सब्जी है जिसके कारण इसकी व्यावसयिक माँग भी अधिक है। यह शीत मौसम की उत्पादन पॉलिहाउस वर्ष भर किया जाता है। पॉलिहाउस में उत्पादन में कुछ चुनौतियाँ होती है परन्तु यदि इसके उत्पादन में सभी बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दिया जाय, तो उत्पादनकर्ता अच्छी गुणवत्ता युक्त शिमला मिर्च की फसल प्राप्त कर सकते है और अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

गुणों से भरी खट्टी मीठी इमली

महेन्द्र जड़िया[1]*, बलवीर सिंह[2] एवं प्रमोद कुमार वर्मा[3]
[1]एल.एन.सी.टी. विश्वविद्यालय, भोपाल मध्य प्रदेश
[2एवं3]रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन मध्य प्रदेश

पत्राचारकर्ता : mahendrajadia89@gmail-com

परिचय

स्वाद एवं पोषण से भरी खट्टी-मीठी इमली एक महत्वपूर्ण वृक्ष है, जिसका वैज्ञानिक नाम *टैमोरिन्डस इंडिका* है। यह *फैबेसी* या *लैग्यूमिनेसी* कुल का सदस्य है। उष्ण व उपोष्ण जलवायु में अच्छी वृद्धि करने वाले इस फलदार वृक्ष की उत्पत्ति स्थान अफ्रीका माना जाता है। यह वृक्ष प्रायः अफ्रीका के सुडान तथा आस-पास के वनों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। भारत में भी यह वृक्ष प्राचीन काल से समझते हुए वनों के आस-पास रहने वाले वनों पर आश्रित समुदाय के लोगों द्वारा इसका प्रयोग किया जाये लगा। सोलहवीं शताब्दी के दौरन अमेरिका के विभिन्न प्रांतों में इसे व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाने लगा।

इमली का वृक्ष बहुपयोगी फलवृक्ष है, भारत सहित जो भारत सहित विश्व के अनेक देशों जैसे श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया तथा थाईलैण्ड आदि में पाया जाता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसके पौधे स्वतः एवं रोपण के द्वारा लगाये जाते हैं। इसके वृक्ष मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र एवं छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में उगाये जाते हैं। इमली का वृक्ष सदा पर्णी और बड़े आकार का होता है, जिसकी अधिकतम ऊँचाई 12-18 मीटर की होती है। वृक्ष की छाल गहरे भूरे रंग की होती है। इसके पौधे पर अनियमित छाल पायी जाती है। इसके फूल लाल, पीले होते तथा इसका फल मुलायम, रसीला, गूदा लम्बवत होता है, जो पकने पर भूरा तथा लाल भूरा हो जाता है। सामान्यतः एशिया में पाई जाने वाली इमली की लम्बाई अधिक होती है। इसक फलियों में 6-12 बीज जोते हैं जबकि अफ्रीका तथा दक्षिण भारतीय किस्मों में 1-6 बीज पाये जाते हैं। इसके बीज कुछ चपटे होते हैं, जो कि चमकीले भूरे रंग के होते हैं। इसका फल स्वाद में खट्टा मीठा होता है। इसके फल में टैट्रिक अम्ल, काबीहइड्रेट, विटामिन समूह एवं कैल्शियम आदि पाये जाते हैं। इसके फल की तुड़ाई फलियो को खींचकर की जाती है। एक पूर्ण विकसित वृक्ष 175-200 कि. ग्रा. सूखे फल/फलियों का प्रतिवर्ष उत्पादन करने में सक्षम होता है।

महत्व

इस वृक्ष की लकड़ी को काष्ठीय कार्य हेतु उपयोग किया जाता है तथा इसके बीजों से तेल भी प्राप्त किया जा सकता है तथा इमली के बीज से प्राप्त पाउडर को कपड़ा उद्योग, जूट उद्योग, बर्तनों को चमकाने के लिए उपयोग किया है, साथ ही औद्योगिक रूप से इससे गोद भी प्राप्त किया जाता है।

उपयोगिता

इमली के कच्चे फल खट्टे व स्वादिष्ट होते हैं, जो सदुपाच, तीखे, आमाशय को शक्ति प्रदान करने में वायुरोग में लाभदायक होते हैं। इसके फल एवं पित्त, कफ दस्तावर, वात तथा हृदय के टॉनिक एवं कृमिनाशक होते हैं। इसका फल कढ़ी, सॉस, चटनी एवं जैली आदि तैयार करने के काम आता है। कच्चे फलों में टार्टरिक एसिड बहुत अधिक मात्रा में होती है। सम्पूर्ण दक्षिण एशिया तथा उपोष्ण क्षेत्रों में इमली के पौधों को सजावटी तथा नगदी फसल के रूप में उगाया जाता है। घरों व मंदिरों में मुख्य रूप से बौद्ध एशिया देशों में इसके फलों के गूदों से विभिन्न उपकरण तथा तांबे से बने वस्तुओं के ऊपर पॉलिश करने में प्रयोग किया जाता है। ताँबा तथा ब्रेस के बर्तनों को अधिक समय तक खुला रखने पर कार्बन-डाई-ऑक्साइड के कारण उसमें हरे रंग की परत बन जाती है, जिसे इमली के गूदे से साफ किया जाता है। इसकी लकड़ियों से फर्नीचर तथा अन्य तरह के उपकरण तैयार किये जाते हैं। इसकी लकड़ी कीटों की प्रतिरक्षक होती है।

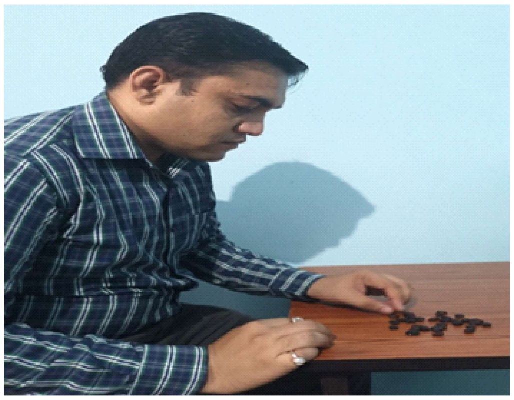

सारणी क्रमांक 1-1.2

इमली के पोषण मूल्य प्रति 100 ग्राम

संघटक	मात्रा
ऊर्जा	239 कि. कैलोरी
काबीहाइड्रट	62.5 ग्राम
शर्करा	57.4 ग्राम
डाइटरी फाइबर	5.1 ग्राम
वसा	0.6 ग्राम
सैचरैटड फैट	0.272 ग्राम
मौंसतुरटेड	0.181 ग्राम
पॉलीअनसेचुरेटेड फैट	0.059
प्रोटीन	2.8 ग्राम
ट्रिप्टोफन	0.018 ग्राम
लाइसिन	0.139 ग्राम
मेथियोनीन	0.014 ग्राम

विटामिन 1.1

विटामिन का नाम	मात्रा
विटामिन ए	30 आइन्यू
थाइमीन (बी$_1$)	0.428 मिली. ग्राम
राइबोफ्लेविन (बी$_2$)	0.152 मिली. ग्राम
नियासिन (बी$_3$)	1.938 मिली. ग्राम
पैंटोथेनिक एसिड (बी$_4$)	0.143 मिली. ग्राम
विटामिन (बी$_6$)	0.0066 मिली. ग्राम
फोलेट (बी$_9$)	14 माइक्रोग्राम
कोलीन	8.6 मिली. ग्राम
विटामिन सी	3.5 मिली. ग्राम
विटामिन ई	0.1 मिली. ग्राम
विटामिन के	2.8 माइक्रोग्राम

ISSN No. 2583-3316

खनिजों के नाम	
खनिजों का नाम	**मात्रा**
कैल्शियम	74 मिली. ग्राम
ताँबा	0.86 मिली. ग्राम
आइरन	2.8 मिली. ग्राम
मैग्नीशियम	92 मिली. ग्राम
फास्फोरस	113 मिली. ग्राम
पोटेशियम	628 मिली. ग्राम
सेलेनियम	1.3 माइक्रोग्राम
सोडियम	28 मिली. ग्राम
जस्ता	0.1 मिली. ग्राम
अन्य घटक	
जल	31.40 ग्राम

सारणी क्रमांक 2

इमली के तेल में एसिड घटक की मात्रा प्रति 100 मिली.

संघटक	मौलिक रूप (%)	तेल रहित (%)
तेल	7.6	0.6
प्रोटीन	7.6	19.0
पॉली सेकेराइडस	51.0	55.0
कुल राख	1.2	1.1
कच्चे रेशे	3.9	3.4
एसिड अघुलनशील राख	04	0.3
नमी	7.1	-

सारणी क्रमांक 3

इमली की गिरी के तेल की फैटी एसिड घटक प्रति 100 ग्राम

एसिड	मात्रा (%)
लोरिक एसिड	0.3
म्यारिस्टिक एसिड	0.4
पामिटिक एसिड	8.7-14.8
स्टीयरिक एसिड	4.4-22.3
एराकिडिक एसिड	3.7-12.2
लिग्नोसेरिक एसिड	4.0-22.3
ओलिक एसिड	19.6-27.0
लिनोलिक एसिड	7.5-77.4
लिनोलेनिक एसिड	2.8-5.6

भण्डारण

इमली की फलियों को बोरों में भरकर शुष्क गोदामों में रखा जाता है। इमली के गूदे से बीज निकाल देने के बाद 2-3 वर्ष तक खराब नहीं होते है। इसके लिए शुष्क कमरे का तापमान या शीत भण्डारण में रखकर आसानी से भंडारित किया जा सकता है।

प्रसंस्करण

परम्परागत रूप से, इमली के सूखे फल को गूदे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और इसका उपयोग भारत में घरेलू उपयोग हेतु किया जाता है। इमली के बीच चिपचिपे भूरी लुगदी से घिरी हुई होती है। यदि इमली के फलों अच्छी तरह भण्डारण किया जाय, तो इसका विपणन करके बाजार से अच्छा मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। इमली के फलों से अनेक प्रसंस्करण खाद्य पदार्थ जैसे-गूदा, इमली पाउडर, जूस, प्यूरी, अचार, चटनी, जैम, जैली एवं कैंडी इत्यादि तैयार किये जा सकते हैं।

इमली का गूदा

इसके फल सूखे एवं रेशे से मुक्त होते हैं। फलों को सूर्य के प्रकाश में सुखाकर एवं उसके बीज निकालकर इससे प्राप्त गूदे को पॉलीथीन या बोतलो में पैकिंग करने के बाद भण्डारण किया जा सकता है।

इमली का पाउडर

कच्ची इमली से गूदा अलग करने के बाद प्रसंस्करण करके सूखे पाउडर के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। पाउडर को सांबर, चटनी, सॉस और आदि व्यंजनों में मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है। इस कारण बाजार में अधिक माँग होने के कारण ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में इमली पाउडर की इकाइयाँ स्थापित की जा रही हैं।

सारणी क्रमांक 4

इमली का अचार बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

क्रमांक	संघटक	मात्रा
(क)	सूखी इमली	2 किग्रा.
(ख)	जल	1,500 मिली.
(ग)	चीनी	1 किग्रा.
(घ)	नमक	30 ग्राम
(ङ)	सरसो का तेल	100 मिली.

(च)	पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइड	1.5 ग्राम
(छ)	मिर्च पाउडर	5 ग्राम
(ज)	काला जीरा	3 ग्राम
(झ)	काली मिर्च	2.5 ग्राम
(ञ)	सरसों पाउडर	10 ग्राम
(ट)	लौंग	1 ग्राम
(ठ)	दालचीनी	1 ग्राम

(अ) इमली का अचार

500 ग्राम इमली के साथ 1 कप सरसों का तेल, आधा चम्मच नमक, आधा चम्मच हल्दी पाउडर, 2 चम्मच मूंग दाल, 10 सूखी लाल मिर्च, 1/4 भाग हींग, मसाले को तेल में मिश्रित करने से पहले अच्छी तरह मिला लेते हैं, इसके पश्चात् हल्दी पाउडर और हींग को मिलाकर गूदा को तेल में मिश्रित कर हिलाते हैं और इसे गर्म करते समय चलाते हैं और इस अचार को संग्रहित कर लेते हैं।

(ब) इमली की चटनी

सर्वप्रथम छिलका बीज रहित इमली को 1 : 1 अनुपात में पानी के साथ मिलाकर आधे घण्टे तक उबालते हैं। तत्पश्चात् इसे मलकर के कपड़े की सहायता से छान लें। अब इसे छने हुए घोल में बाकी बनी हुई सामग्री मिला दें और इसे अच्छी तरह से उबालते हुये चलाये जब तक कि चीनी/गुड़ अच्छी तरह घुल न जाये। चटनी ठंडा होने पर इसे कीटाणुरहित बोलतों में 200-300 मिली. भरकर ढक्कन से बन्द करके और बोतल का लेबल कर दें। प्राकृतिक शीतलन में इन पदार्थों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

सारणी क्रमांक 5

इमली की चटनी बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

क्रमांक	संघटक	मात्रा
(क)	इमली	1 किग्रा.
(ख)	पानी	1 किग्रा.
(ग)	चीनी	500 ग्राम
(घ)	काला नमक	10 ग्राम
(ङ)	नमक	10 ग्राम
(च)	लाल मिर्च पाउडर	7 ग्राम
(छ)	भूना जीरा पाउडर	7 ग्राम

इमली की चटनी

इमली को छीलकर इसके गूदे का पेस्ट बनाये तत्पश्चात् उसमें चीनी और 1 कप पानी मिला लें। अब इस घोल को छानकर उबलने के लिए रख दें। घोल में उबाल आने के बाद इसमें किशमिश डाल दें और थोड़ी देर चम्मच से चलाते रहें, घोल को गाढ़ा होने तक उबालते हैं। इसके उपरांत इमली के गाढ़े घोल में नमक, काली मिर्च, सोंठ पाउडर, हींग, भुना हुआ जीरा पाउडर और गरम मसाला मिलाकर 2 मिनट तक पका लें, इस प्रकार चटनी तैयार हो जाती है।

सारणी क्रमांक 7

इमली की चटनी बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

क्रमांक	संघटक	मात्रा
1	इमली	200 ग्राम
2	चनी/गुड़	50 ग्राम
3	काला नमक	4 ग्राम
4	सादा नमक	2 ग्राम
5	किशमिश	50 ग्राम
6	गरम मसाला	5 ग्राम
7	लाल मिर्च	4 ग्राम
8	सोंठ पाउडर	7 ग्राम
9	भुना हुआ जीरा पाउडर	15 ग्राम
10	हींग	3 ग्राम
11	दालचीनी	1 ग्राम

(द) इमली का जूसः छिलका व बीज रहित इमली के सूखे फलों को 1 : 1 अनुपात पानी के साथ मिलाकर आधे घण्टे के लिये उबालते हैं। इसके पश्चात् उसके फल को मलमल के कपड़े की सहायता से छानकर उसके रस कीटाणुनाशक बोतलों में 200-300 मिली भरने के बाद ढक्कन से बन्द कर देते हैं और बोतल को लेबल करते हैं। तत्पश्चात् प्राकृतिक शीतलन इन पदार्थों को लम्बे दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता/जाता है।

(य) इमली का अर्कः इमली के फल को पानी में भिगोकर गुदे के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिसके कारण इसके गुदे का प्रयोग खाद्य पदार्थों सॉस बेकरी, चटनी और कभी-कभी स्वाद के नियंत्रण के लिए किया जाता है। तंबाकु उद्योग में स्वाद संघटक के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है और इसको एक वर्ष तक भण्डारण किया जा सकता है। जिसको एच.डी.ई. पॉलिथिन में 25-90 तक भरा जाता है।

निष्कर्ष

इमली एक बहुपयोगी फलवृक्ष है, जो विश्वभर में बहुत ही लोकप्रिय हे। यह काष्ठीय कार्य हेतु, बर्तनों को चमकाने के लिए प्रयोग किया जाता है, साथ ही साथ यह बाड़ तथा हवा की गति को कम करता है। इसका उपयोग तेल, आमाशय को शक्ति प्रदान करने में पित्त, कफ, दस्तावर, वात तथा हृदय के टानिक के रूप में किया जाता है साथ ही इसके फल से कढ़ी, सॉस, इमली पाउडर, जूस, प्यूरी अचार, चटनी, जैम, जैली और कैंडी आदि तैयार किया जाता है। इमली की फसल के लिए अधिक खर्च भी नहीं होता है और इसके वृक्ष पर रोग तथा कीट भी कम लगते हैं। अतः इमली की खेती करने से अधि आय प्राप्त की जा सकती हैं।

✡✡

ISSN No. 2583-3316

भूमि को स्वस्थ्य बनायें

ओपेन्द्र कुमार सिंह[1*], आशुतोष मिश्र[2], उमाशंकर मिश्र[3] एवं पावन सिरोठिया
प्राकृतिक संसाधन विभाग, कृषि संकाय महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना
पत्राचारकर्ता : jain64235@gmail.com

परिचय

आधुनिक खेती में खाद्यान्न फसलों की बौनी अर्धबौनी व संकर किस्मों सघन कृषि प्रणाली, रासायनिक उर्वरकों का असन्तुलित प्रयोग तथा कृषि रसायनों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग कर मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में विभिन्न प्रकार के बदलाव आये हैं। निःसंदेह उपरोक्त कारकों से कृषि उत्पादन में वृद्धि तो हुयी है परन्तु इसका प्रतिकूल प्रभाव मृदा पर उगायी जाने वाली फसलों पर पड़ रहा है और साथ ही साथ इन रसायनों के कारण मृदा की उत्पादकता भी कम होती जा रही है। मृदा अथवा भूमि के स्वास्थ्य से आशय यह है कि मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक दशायें फसलोत्पादन के अनुकूल बनी रहे।

भूमि के अस्वस्थ से आशय जब भूमि में उसके पोषक तत्व अथवा उर्वरा शक्ति कम हो जाती है तो वह भूमि अस्वस्थ कहलाती है। जिसे रिडक्शन भी कहा जाता है। परन्तु कुछ ऐसी विधियाँ हैं, जिनको अपनाकर भूमि को स्वस्थ बनाया जा सकता ह और अच्छी उपज भी प्राप्त हो सकती है। भूमि को स्वस्थ बनाने की पद्धति दो विधियों पर आधारित है।

प्रथम विधि भूमि के भौतिक व रासायनिक गुणों पर आधारित हैं। इस विधि के द्वारा भूमि में भौतिक तत्वों व रासायनिक तत्वों के स्वतंत्र सकेतकों के एक सेट का प्रयाग करके उनकी उपस्थिति व उनकी मात्रा का पता लगाया जाता है।

दूसरी विधि के जैविक व अजैविक विधि पर आधारित है परन्तु इनकी अधिकता व न्यूनता भूमि की गुणवत्ता को प्रभावित करते है।

प्रस्तुत लेख में भूमि को स्वस्थ्य बनाने के विभिन्न विधियों द्वारा वर्णन किया गया है जो कि निम्नवत् है।

अच्छी भूमि की जुताई

भूमि को अच्छी तरह से और समय पर जुताई करना चाहिए, जिससे भूमि को स्वस्थ्य बनाने में मदद मिलती है और भूमि में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है, जिससे भूमि में अघुलनशील पोषक तत्व घुलनशील में बदल देते है। इस प्रकार सभी आवश्यक पोषक तत्व पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते है और भूमि भी स्वस्थता बनी रहती है। भूमि का झुकाव फसल उत्पादन के लिए उपयुक्तता के संदर्भ में भूमि के समग्र भौतिक चरित्र को संदर्भित करता है।

पर्याप्त गहराई

पर्याप्त गहराई से तात्पर्य उस भूमि की रूपरेखा से है, जिस तक जड़े बढ़ने और कार्य करने में सक्षम हैं। संघनन परत या पिछले कटाव के परिणामस्वरूप उथली गहराई वाली भूमि मौसम में अत्यधिक उतार चढ़ाव के दौरान अतिसंवेदनशील हो जाती है। इस प्रकार फसल सूखे या बाढ़ के गहराई के प्रति जिम्मेदार होती है।

पोषक तत्वों का प्रयोग

भूमि को स्वस्थ्य बनाये रखने के लिए इष्टतम पौधों की वृद्धि और प्रणाली के भीतर पोषक तत्वों के संतुलित चक्रण को बनाए रखने के लिए पोषक तत्वों की पर्याप्त और सुलभ आपूर्ति आवश्यक है। जहाँ अतिरिक्त पोषक तत्व लीचिंग और बढ़ाते हैं वहीं भूजल प्रदूषण बढ़ाते हैं। उच्च पोषक तत्व अपवाह और ग्रीन हाउस गैस के नुकसान के साथ-साथ पौधों और सूक्ष्मजीव समुदायों के लिए विषाक्तता पैदा कर सकते है। इसलिए भूमि को स्वस्थ्य बनाने के लिए संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों का प्रयोग करना चाहिए।

लाभकारी पादप तथा कीटों की उपस्थिति

लाभकारी पादप तथा कीटों की छोटी-छोटी आबादी जैसे (ट्राइकोगामा, नेबिस, जियोकारिस, ओरियस, क्रोइसोपली, ब्रैकान आदि), भूमि को स्वस्थ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। कृषि उत्पादन प्रणालियों में हानिकारक पौधों के रोगजनक और कीट रोग फसलों को हानि पहुँचाते हैं। एक अस्वस्थ भूमि में लाभकारी सूक्ष्म जीवों की आबादी कम होती है। भूमि से

पोषक तत्वों की प्राप्ति के लिए अहितकारी पादप रोग जनक एवं कीट हितकारी सूक्ष्म जीवों और पादप रोग जनकों से सीधी प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधों और भूमि पर रोग दिखाई देते हैं। इसलिए एक स्वस्थ भूमि बनाने के लिए स्वस्थ पादप रोग जनकों और लाभकारी कीटों की छोटी-छोटी आबादी का होना अति आवश्यक है।

खाद्य विकास की व्यवस्था

भूमि को स्वस्थ्य बनाये रखने के लिए अच्छी जल निकासी होना अति आवश्यक है क्योंकि भारी बारिश के बाद भी भूमि पर अधिक समय तक जल नही भरना चाहिए। यदि अधिक समय तक जल भरा रहता है, तो पोषक तत्वों की लीचिंग अधिक सम्भावना रहती है, जिससे भूमि अस्वस्थ्य (बेकार,खराब) हो जाती है। एक स्वस्थ्य भूमि बनाने के लिए भूमि से जल बहुत तेजी से निकालना चाहिए है क्योंकि भूमि के ऊपर 48-72 घण्टे से अधिक पानी नही रूकना चाहिए।

लाभकारी जीवाणुओं की उपस्थिति

भूमि को स्वस्थ्य बनाने के लिए लाभकारी जीवों का अधिक संख्या में होना अति आवश्यक है। जीवाणुओं के अधिक होने से भूमि मुलायम और भुरभुरी बनी रहती है और इनके कारण भूमि में वायु का आवागमन सुचारू रूप से बना रहता है।

खरपतवार की कम उपस्थिति

भूमि को स्वस्थ्य बनाये रखने के लिए खरपतवार का कम होना अति आवश्यक है। यदि भूमि पर अधिक खरपतवार होगे, तो भूमि में उपस्थित आवश्यक पोषक तत्वों का ह्रास अधिक होगा और जल की अधिक मात्रा का भी नुकसान होगा, जिससे भूमि हमारी बंजर हो जायेगी। इसलिए भूमि को स्वस्थ्य बनायें रखने के लिए कम खरपतावर होना अति आवश्यक है।

जैविक खाद का अधिक मात्रा में प्रयोग करना चाहिए

हमारे मृदा को स्वस्थ्य रखने के लिए जैविक खाद का अधिक प्रयोग करना चाहिए क्योंकि जैविक खाद में उपस्थित लाभकारी जीवाणुओं जैसे—ऐजेटोबेक्टर, एजोस्पाइरलम, राइजोबियम, ब्लू ग्रीनएलगी आदि बैक्टीरिय की संख्या अधिक होती है, पाये जाते हैं। ये जीवाणु भूमि को स्वस्थ्य बनाने में मदद करते है। इसलिए रासायनिक उर्वरकों को छोड़कर जैविक खाद का अधिक उपयोग करना चाहिए।

निष्कर्ष

उपरोक्त लेख के दिये गये सुझाव द्वारा यदि भूमि को स्वस्थ बनाने के उपाय किये जाय तो इससे भूमि की उर्वरता शक्ति बढ़ सकती है और जिससे फसल की उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होती है और साथ ही साथ मृदा उर्वरा शक्ति भी बरकरार रहती है।

✡ ✡

ISSN No. 2583-3316

सम्पूर्ण फली खाने योग्य स्नो पी की वैज्ञानिक खेती

विजय बहादुर
उधान विज्ञान विभाग, शुआट्स प्रयागराज
प्रचारकर्ता : vijaybahadur2007@gmail.com

परिचय

दाल वाली फसल में मटर एक प्रमुख स्थान है। साधारणतः खाने योग्य मटर को स्नो पी, शुगर पी, ओरियेन्टल पी कहा जाता है। स्नो पी एवं छिलके सहित खाने योग्य मटर शुगर स्नैप पी का वानस्पति नाम *'पाईसम सटाइवम (Pisum Sativum)* है। जहाँ स्नो पी *सेकेरिटम (Secaritam)* प्रजाति के अन्तर्गत आती है। वही दूसरी ओर शुगर स्नैप पी *मैकरोकार्यम (Macrocryum)* के अन्तर्गत आती है। स्नोपी की फलियाँ प्रारम्भिक अवस्था में फूलकर चपटी हो जाती है और दाने अविकसित रहते हैं, जो कि खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होती है। वहीं शुगर स्लैब पी एक गोलाकार फली वाली मटर है, जो कि साधारण मटर के समान दिखती है और ये फली के अधिक पुष्ट और रसभरे अविकसित बीज होते हैं। इन दोनों मटर की प्रमुख विशेषतायें यह हैं कि ये इनका छिलका, मांसल एवं इनमें बीज का विकास धीमी गति से विकसित होता है। सनैप व स्नो पी की फली अधिक रसदार इसलिए होती है क्योंकि इनमें आन्तरिक कारपिल का रेशेदार आवरण नहीं होती है।

मटर के पोषक तत्व

100 ग्राम मटर से सामान्यतः 12 ग्राम कार्बोहाइड्रेट होता है और 680 आई.यू. विटामिन 'ए' होता है। अन्य पोषक तत्व न्यून मात्रा में होते हैं।

मटर के पोषक तत्व

पोषक तत्वों के नाम	मात्रा प्रति 100 ग्राम
कुल वसा	4 मिलीग्राम
सोडियम	5 मिलीग्राम
कार्बोहाइड्रेट	14.46 ग्राम
रेशा	5.1 ग्राम
शर्करा	5.67 ग्राम
प्रोटीन	5.42 ग्राम
कैल्शियम	25 मिलीग्राम
आयरन	1.47 मिलीग्राम
पोर्टेशियम	244 मिलीग्राम
विटामिन ए	38 माइक्रोग्राम
विटामिन सी	40 मिलीग्राम

किस्में

मटर की अनेकों किस्में पायी जाती हैं। जिसमें स्नोपी और शुगर पी की एक प्रजाति शामिल है। स्नोपी और शुगर पी की भी अनेकों किस्में पायी जाती हैं।

क. स्नो पी किस्में

आरिगन शुगर फली, आरियन सुगर फली–द्वितीय, आरिगन ज्वाइंट बौनी ग्रे सुगर मेभोथ, मेल्टिंग शुगर नोफिला ओर नोरबी आदि स्नोपी की किस्में हैं। जहाँ आरिगन शुगर फली द्वितीय व आरिगन ज्वाइंट झाड़ीनुमा होती है और ये दो किस्में भभुतिया रोग और इनेशन वायरस के प्रतिरोधी होती है। वही बौनी ग्रे सुगर मेमोथ, मेल्टिंग सुगर नोफिला और नोरली रेशेरहित होते हैं।

ख. शुगर स्नैप की किस्में

शुगर स्नैप मटर की दो प्रकार की होती हैं। जो निम्नवत् है–

(अ) झाड़ीदार मटर : शुगर डैडी, सुगर पाप अरली स्नैप और सुगर बाप कैसकेडिया, शुगर रे, शुगर मेल, सुपर सुंगर मेल, सुगर आज और स्नैपी आदि झाड़ीदार मटर की प्रमुख किस्में है।

(ब) पोल टाइप : सुपर शुगर स्नैप पोल टाइप की प्रमुख किस्में हैं।

उत्पादन तकनीक

जलवायु–खाने योग्य मटर अन्य दूसरी फलियों के समान ठण्डे शुष्क मौसम में जल्दी बढ़ती है। ये मिट्टी में ठण्डे तापमान में अंकुरित होती है। मटर की बीजों का अंकुरण 4^0 से.ग्रे. से 14^0 से.ग्रे. के अन्दर अच्छा होता है। अच्छी उपज के लिये न्यूनतम तापमान 13^0 से0ग्रे0 से 18^0 से0ग्रे0 के बीच होना चाहिए। किसी अन्य वानस्पतिक फसल की अपेक्षा इसकी फलिया पाले में भी भली प्रकार विकसित हो जाती है।

भूमि और भूमि की तैयारी

इसकी खेती सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है परन्तु एक अच्छी पैदावार के लिये अच्छे जल निकास वाली, जीवांश युक्त गहरी बलुई दोमट या स्लिट दोमट और चिकनी दोमट भूमि, जिसका पी0एच0 मान 6.0–7.5 के बीच ही उपयुक्त मानी जाती है। यदि नमी की कमी हो, तो बोने से पहले पलेवा कर देना चाहिये। भूमि की अच्छी तरह जुताई करके खेत को समतल कर लेना चाहिये। बुआई के समय भूमि में अंकुरण के लिये पर्याप्त नमी का होना बहुत आवश्यक है।

बुआई का समय

इसकी बुआई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह से शुरू करके नवम्बर के अंत तक की जाती है।

बीज की मात्रा

बीज एक महत्वपूर्ण तत्व है। एक अच्छी मटर की पैदावार के लिये ये एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चूँकि स्नो और स्नैप मटर का आकार छोटा होता है, इसलिए एक हेक्टेयर जमीन के लिये 55 से 60 किग्रा. बीज पर्याप्त होते हैं। एक ग्राम में लगभग 4–6 स्नो पी और स्नैप पी के बीज होते हैं।

बीज की बुआई तथा दूरी

स्नो पी हाथ से तुड़ाई वाली फसल है। इसलिये बीज की पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60–90 सेमी. होनी चाहिये और 7.5 से 10 सेमी. पंक्ति के अन्दर होनी चाहिये। बौनी व सीमित बाढ़ वाली स्नो पी की किस्में सामान्यतः खेत में ऐसे ही बो दी जाती है परन्तु असीमित बाढ़ वाली स्नो पी की किस्मों हेतु स्टेकिंग की जरूरत पड़ती है। बीज की बुआई 5–7 सेमी. की गहराई पर करनी चाहिए। बुआई से पहले बीजों को थिरम या बावस्टीन से उपचारित कर लेना चाहिये।

खाद और उर्वरक

राइजोवियम कल्चर और पी.एस.बी. की 200 ग्राम मात्रा प्रति दस किलो 10 किलो बीज की दर बुआई से पहले उपचारित करके बोने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। नत्रजन की मात्रा को सावधानी पूर्वक फसल की उपज के लिये प्रयोग करना चाहिये। अच्छी फसल के लिये प्रति हेक्टेयर 20 टन, सड़ी गोबर की खाद, 40 किग्रा नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 60 किग्रा. पोटाश का उपयोग करना चाहिये। भूमि की तैयारी करते समय सड़ी गोबर की खाद फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा मिट्टी में अच्छे से मिला देना चाहिए। बाकी नत्रजन की मात्रा को आधा– आधा भाग बराबर मात्रा में बुआई के एक महीने बाद एवं फूल लगने के समय देना चाहिए।

सिंचाई

सामान्यतः मटर को कम नमी की आवश्यकता होती है और 3–6 (इंच) पानी पर्याप्त होती है। पहली सिंचाई फूल आते समय एवं दूसरी सिंचाई फलिया बनते समय करनी चाहिये। अधिक मात्रा में पानी लगाने से मटर के पौधे में श्वसन क्रिया प्रभावित होती है और म्लानि रोग का प्रकोप हो जाता है। फहारा विधि से सिंचाई ज्यादा लाभप्रद होती है और पानी की बचत भी होती है।

अंतः औद्योनिकी क्रियायें

मटर के लिए 1 से 2 निकाई की आवश्यकता होती है। इसके अलावा खरपतवार के नियंत्रण के लिये रासायनिक खर–पतवार नियंत्रक का प्रयोग करें और बुआई के एक या दो दिन बाद 3.5 लीटर स्टाम्प (पेन्डीमेथिलीन) 1,000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। खरपतवारनाशी छिड़कते समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। सही पानी का निकास

बहुत जरूरी होता है। स्नो पी की फसल में भूमि जनित समस्याऐं मुख्यतः होती हैं। जड़ों की सड़न की समस्या को रोकने के लिये जल निकास का उचित प्रबन्धन करें। कठोर मृदा स्नो पी की उत्पादकता को बुरी तरह से प्रभावित करती है।

तुड़ाई और उपज

स्नो पी की तरह सुगर स्नैप पी की तुड़ाई की जाती है। स्नो पी और शुगर स्नैप पी की तुड़ाई हाथ से की जाती है। कभी–2 फली को पूरी तरह परिपक्व होने के पूर्व ही रोज उसकी तुड़ाई की जानी चाहिए। स्नो पी की फसल में (तुड़ाई) तब की जाती जब फली लगभग पूरी तरह विकसित हो जाये। स्नो पी और सुगर स्नैप पी की तुड़ाई कुछ सप्ताह तक लगातार करनी पड़ती है। स्नो पी की उपज लगभग 10–12 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। जबकि स्नैप पी की उपज 6–10 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

तुड़ाई के बाद देखरेख और संरक्षण

तुड़ाई की गयी फलियों को जितना जल्दी हो 0^0 से.ग्रे. तापमान पर ठण्डा कर के संरक्षित कर देना चाहिये, जिससे कि फलियों को लम्बे समय तक रखी जा सके।

खाने योग्य फली अतिशीघ्र खराब हो जाती है इसे लम्बे समय तक संरक्षित करने के लिए उसे हम 1–2 सप्ताह तक 0^0 से.ग्रे. तापमान पर और 95–98 प्रतिशत आर्द्रता पर रखा जाता है। 14 दिनों के बाद फलियों में सड़न, पीलापन और स्टार्च की कमी बहुत जल्दी होने लगती है।

प्रमुख कीट, रोग व इसके रोकथाम

मटर के पौधे जमीन की सतह पर फैलकर ही अपना विकास करते हैं इसक पौधों पर कई तरह के कीट और जीवाणु जनित रोगों का प्रकोप देखने को मिलता है, जिसका सीधा प्रभाव पौधों की पैदावार पर देखने को मिलता है इसलिए इसके पौधों पर लगने वाले कीटों का उचित रोकथाम कर फसल को रोग ग्रस्त उत्पादन हासिल किया जा सकता है। मटर के पौधो में लगने वाले प्रमुख कीटों व रोगों का विवरण निम्न प्रकार है।

प्रमुख कीट और इसके रोकथाम

प्रमुख कीट : मटर के पौधों में निम्नलिखित कीट लगते हैं।

(क) मॉहू (चेपा) : इस कीड़े का प्रकोप जनवरी के महीने में आरम्भ हो जाता है। यह कीड़ा पत्तियों और कोमल टहनियों का रस चूसता है।

रोकथाम : डायमेथोयेट कीटनाशक दवा का 1.5 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

(ख) लीफ माईनर (पत्ती में सुरंग बनाने वाला कीड़ा) : यह कीड़ा पौधे की पत्तियों में सफेद धागे की तरह बारीक सुरंग बनाता है। इसके अधिक प्रकोप से पत्तियाँ सूख जाती हैं।

रोकथाम : इस कीट से बचाव के लिए नीमगोल्ड या नीम की गिरि का 2 मिली./लीटर पानी में घोलकर अर्क 4 प्रतिशत का छिड़काव करें तथा 15 दिन के अन्तराल पर दूसरा छिड़काव कर दें।

(ग) फली छेदक कीड़ा : इस कीड़े की सूड़ी फलियों में छेदक करके अन्दर खाती है।

रोकथाम : क्विनौलफॉस नामक कीटनाशी दवा का 1.5 मिली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

प्रमुख रोग

प्रमुख रोग मटर के पौधो में पाये जाने वाले प्रमुख रोग निम्नवत् हैं।

(क) चूर्णिल आसिता : यह रोग पत्ती, तना तथा फलियों को प्रभावित करती है। इस रोग में पत्तियों पर हल्के चिन्ह बन जाते हैं। जो बाद में सफेद पाउडर (चूर्ण) के रूप में बढ़कर एक दूसरे से मिल जाते हैं। इस प्रकार ये पूरी पत्ती को ढंक देते हैं। जिससे बाद में सभी पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती हैं।

रोकथाम

- इसके नियंत्रण के लिये घुलनशील गंधक का चूर्ण 2.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

- इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मों जैसे सुगर पौड–2 एवं आरेगन ज्वाइंट का चयन करना चाहिए।
- रोग का ज्यादा प्रकोप होने पर पेन्कोनाजोल 0.05 प्रतिशत (1 मिली. दवा प्रति 4 लीटर पानी में) या कैलिक्सीन 0.1 प्रतिशत (आधा मिली. दवा 1 लीटर पानी में) के घोल का 10 दिन के अन्तराल पर 2–3 बार छिड़काव करें।

(ख) उकठा एवं जड़ सड़न : यह फफूँद जनित रोग है। जिससे प्रभावित पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा पौधा सूख जाता है। फलियाँ पूरी तरह भरती नहीं हैं। यदि रोग का प्रकोप अधिक हो जाय, तो फलियों में बीज नहीं बनते और तने के नीचे के भाग का रंग बदल जाता है। पौधों की जड़े सड़ जाती हैं और निचली पत्तियॉ पीली पड़ने लगती हैं। इससे पौधा सूख जाता है।

रोकथाम

- इसके लिए फसल चक्र को अपनाना चाहिए, जिसमें ज्वार, बाजरा एवं गेहूँ की ही फसल ले सकते हैं।
- खेत में हरी खाद की जुताई के एक सप्ताह के अन्दर ट्राइकोडर्मा पाउडर 5 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी गोबर की खाद में अच्छे से मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।
- बुआई से पूर्व बीज को कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए।

(ग) गेरूई (रस्ट) : इसके प्रकोप से पौधे जल्दी सूख जाते हैं, तथा उपज कम हो जाती है। यह रोग भी फफूँद द्वारा फैलता है। प्रारम्भ में पत्तियों की निचली सतह पर छोटे छोटे गेरूई या पीले रंग के उठे हुए धब्बे बनते हैं। धीरे धीरे इन धब्बों का रंग भूरा लाल पड़ने लगता है। कई धब्बों के आपस में मिलने से पत्तियाँ सूख जाती हैं।

रोकथाम

- रोग से प्रभावित पौधों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- रोग के नियंत्रण के लिए हेक्साकोनाजोल 1 मिली. प्रति 3 लीटर पानी या विटरेटीनाल 1 ग्राम प्रति 2 लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 1–2 बार छिड़काव करें।

(घ) एथेक्नोज : इस रोग में पत्तियों के ऊपर पीले से काले रंग के सिकुड़े हुए धब्बे बन जाते हैं, जो बाद में पूरी पत्ती को ढक लेते हैं। छोटे फलों पर काले रंग के धब्बे आने लगते हैं तथा रोगी फलियाँ सिकुड़ कर मर जाती हैं। यह रोग बीज के माध्यम से एक मौसम से दूसरे मौसम में जाती है।

रोकथाम

- बुआई से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए।
- फूल आने के बाद कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- रोग रोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।
- अधिक प्रकोप होने पर कॉपर ऑक्सी क्लोराइड फफूँदनाशक का 2.5 ग्रा. दवा/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

निष्कर्ष

मटर एक प्रमुख दलहनी फसल है। वर्तमान समय में इसकी घरेलू व व्यवसायिक माँग भी बहुत तेजी से बढ़ रही है। जिसके कारण मटर अब वर्षभर व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में हिमशील अवस्था में उपलब्ध रहता है। इसकी माँग को देखते हुये अब किसान मटर की खेती बड़े पैमाने पर कर रहे हैं। परन्तु जैसे इसकी खेती भी बढ़ रही है वैसे ही उसकी खेती पर रोग व कीट का प्रकोप भी बढ़ रहा है, जिससे उसकी उपज भी प्रभावित होती है। यदि किसान मटर के खेतों में लगने वाले कीट व रोग का उचित प्रबंधन करते हैं, तो इससे उनकी उपज प्रभावित नहीं होती और वो अपनी उपज उचित मूल्य प्राप्त करते हैं।

For the welfare of the Farmer's, the society "Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors" willing to publish E-magazine in the name of "Krishi Udyan Darpan E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (English**, Innovative Sustainable Farming**.)**, which covers across India.**

AUTHORS GUIDELINE

All authors submitting articles must be annual or Life member of **SAAHAS, Krishi Udyan Darpan** E-Magazine Hindi / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine English**, (Innovative Sustainable Farming**). Articles must satisfy the minimum quality requirement and plagiarism policy. Author's can submit the original articles in Microsoft Word Format through provided email, along with scanned copy of duly signed **Copyright Form**. Without duly signed Copyright Form, submitted manuscript will not processed.

1. The manuscript submitted by the author(s) has the full responsibility of facts and reliable in the content, the published article in **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine English**, (Innovative Sustainable Farming**.) Editor/ Editorial board is not reliable with the manuscript.
2. Must be avoiding recommendation of Banned Chemicals by Govt. Of India.
3. The manuscript submitted by the author(s) should be in Microsoft Word along with the PDF file and the 2-3 (Coloured/Black) pictures should be in high quality resolution in JPEG format, manuscript contains pictures are should be original to the author(s).
4. Articles must be prepared in an editable Microsoft word format and should be submitted in the online manuscript submission system.
5. Write manuscript in **English** should be in **Times New Roman with font size 12 point in single spacing** and line spacing will be 1.0.
6. Write manuscript in **Hind**i should be in **Kurti Dev10 / Mangal with font size 12 point in single spacing** and line spacing will be 1.0.
7. The title should be short and catchy. Must be cantered at top of page in Bold with Capitalize Each Word case.
8. Authors Names, designations and affiliations should be on left below the title. Designations and affiliations should be given below the Authors' Names. Indicate corresponding author by giving asterisk (*) along with Email ID
9. Not more than five authors of one article.
10. It should summarize the content of the article written in simple sentences. (Word limit 100 -150) and the full article should contains (**1600 words maximum or 3 page of A4 Size**)
11. The text should be clear, giving complete details of the article in simple Hindi/English. It should contain a short introduction and a complete methodology and results. **Authors must draw Conclusions and the Reference of their articles at last**. The abbreviation should be written in full for the first time. Scientific names and technical nomenclature must be accurate. Tables, figures, and photographs should be relevant and appropriately placed with captions among the texts.
12. Introduction must present main idea of article. It should be well explained but must be limited to the topic.
13. Avoid the **Repetitions** of word's, sentences and Headings.
14. The main body of an article may include multiple paragraphs relevant to topic. Add brief subheads at appropriate places. It should be informative and completely self-explanatory.
15. Submitted manuscript are only running article and contains the field of Agriculture, Horticulture and Allied sectors.
16. All disputes subject to Prayagraj Jurisdiction only.

ABOUT THE SOCIETY

Father of Nation Mahatma Gandhi's concept of rural development meant self-reliance, and least dependence on outsiders. India is an agrarian country and about 65% of our population lives in rural areas. But unfortunately, most of us do not have any idea about the extent of poverty and the real conditions of rural India.

With the purpose of serving the agricultural fraternity and farming community the Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors (SAAHAS) was founded in 2020 (under Society Registration Act, 1860). Among multifarious ways of serving farming community we are involved in training of the farmers by organising technology dissemination programmes in villages, guiding them to adopt good agricultural practices involving planned crop management. It helps in reducing farm base losses and motivating them to become farmer level entrepreneur rather than a simple producer. It involves initiating skill based knowledge to the student of agriculture, horticulture and allied sectors to encourage them to serve the farmers in the best possible ways.

SAAHAS calls us to look into the genuine problems of farmers and address those issues for their betterment in the arena of Agriculture, horticulture and allied sectors. Besides agriculture, horticultural crop production has been given a major focus by Govt. of India in future crop diversification, improving livelihood through doubling farmers' income, economic opportunities through export and job opportunities. While good beginning is made, much is to be achieved in different areas in agro-horticulture sector.

Apart from that, SAAHAS helps developing the culture to involve more number of women in farming, processing of crops and value addition thereof for higher returns in terms of total income. SAAHAS eagerly involves with the farmers and agriculture entrepreneur to motivate them for introducing hi-tech farming, which includes growing of high value horticultural crops in hydroponics, aeroponics, polyhouse, net house and greenhouse. The society has geared up its activities to take up the challenges of biotic and abiotic stresses, emerging needs of quality seeds and planting material and reducing cost of production.

There are several government and non-government organisations intended of farmer's welfare; still there is dire need for more involvement and attachment with the farmers. Our society's noble initiative can ensure diminishing of the persistent gap between agro-technocrats, scientists with the needy farmers. We not only ensure that the farmers choose right variety of right crop, better nutrient management through diagnosis recommended system and pest diagnosis but we also help them to sale their produce at premium rates. There is a major issue of chemical residues in food, soil and ecology which is also a big concern of the century. The Society also aims to motivate the farmers either for minimal use of chemical inputs or total adoption of organic farming. Consultancy, training, awareness programs, national and international seminars and symposia and technical services are the prime activities of the SAAHAS.

Society for advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors publishes peer reviewed scientific journal, 'Journal of Applied Agriculture and Life Sciences (JAALS)', biannually since January 2020 focusing on articles, research papers and short communications of both basic and applied aspect of original research in all branches of Agriculture, horticulture and other allied sciences. To apprise the scientists and all those who are working in the field of Agriculture, horticulture and allied sectors about recent scientific advancement is the aim of the Journal.